॥ओ३म्॥

वैदिक-पथ

मासिक



स्मृ० श्री घूडमल आर्य



स्मृ० श्री प्रहलाद आर्य

वेदोक्त विश्व मानवीय सम्वेदनाओं का संवाहक

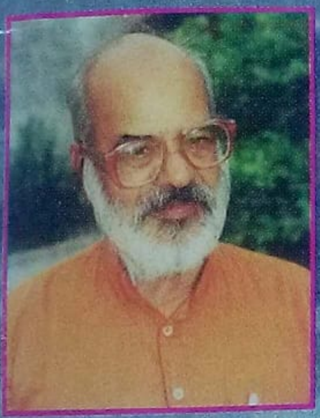
वर्ष- १० : अंक-५

सृष्टिसंवत्-१,९७,२९,४९,११८

विक्रम-संवत् : २०७४

दिसम्बर, २०१७

दयानन्दाब्द-१९३



आद्यसम्पादक :

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती (स्मृतिशेष)

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी-३२२ २३०

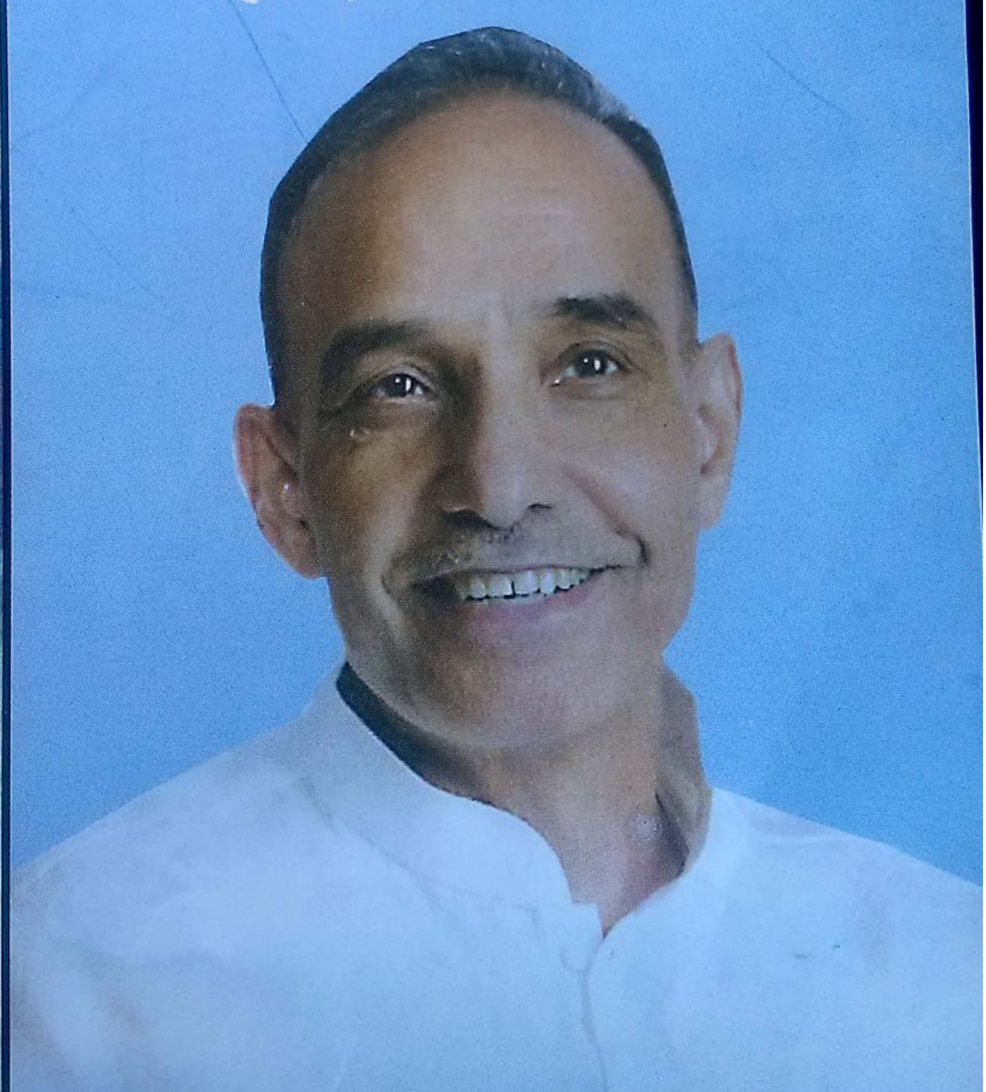
चल० : ०९४१४०३४०७२

०९८८७४५२९५९

एक प्रति : १५.०० रू०

Email-aryaprabhakar@yahoo.com

महर्षि दयानन्द के मानस-पुत्र



डॉ० सत्यपाल सिंह (पूर्व कमिश्नर, मुम्बई पुलिस)
केन्द्र सरकार में मानव संसाधन, जल संसाधन तथा नदी विकास एवं गंगा संरक्षण राज्यमंत्री बनाये जाने पर

वैदिक-पथ परिवार की ओर से

हार्दिक शुभकामना

वेदनिधि-योजना

न्यास के अन्तर्गत चारों वेद व इससे सम्बन्धित उपवेद, गृह्यसूत्र, आरण्यक, दर्शन, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, महर्षि दयानन्द कृत साहित्य आदि के प्रकाशन की बृहद् योजना है। न्यास के साधन सीमित हैं, अत: आपसे आर्थिक सहयोग की अपेक्षा है। हमने न्यास में वेदनिधि की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत एक लाख रुपये देनेवाले सहयोगी का रंगीन चित्र व नाम इस योजना में प्रकाशित होनेवाली प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक संस्करण में दिया जाएगा और भेंटस्वरूप एक संस्करण की एक प्रति भिजवाई जाएगी। हमारा आग्रह है कि पवित्र ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए आप स्वयं तथा अपने परिचितों से यह राशि दिलवाकर पुण्य के भागी बनकर अपना यश प्रसारित कर परिवार में पुस्तकालय का निर्माण करें। अभी तक निम्न उदारमना सहयोगियों से राशियाँ प्राप्त हो चुकी हैं—

०१. स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती, दिल्ली
०२. आचार्य श्री आनन्दजी पुरुषार्थी, होशंगाबाद (म० प्र०)
०३. श्री हरिश्चन्द्रजी साहित्यानी, दाहोद (गुजरात)
०४. श्री गणेशदास गरिमाजी गोयल, दिल्ली
०५. श्री उपेन्द्रनाथजी चतुर्वेदी, आगरा (उ० प्र०)
०६. श्रीमती प्रतिभाजी मित्तल, हिण्डौन सिटी (राज०)
०७. श्री मित्रावसुजी, माडल टाऊन, दिल्ली
०८. श्री श्रीकृष्णजी, श्रीमती रक्षाजी चोपड़ा सोलिहुल (यू० के०)
०९. श्री गोपालचन्द्रजी बरमिंघम (यू० के०)
१०. आर्यसमाज, बैस्ट मिडलैण्ड्स बरमिंघम (यू० के०)
११. स्वामी श्री श्रद्धानन्दजी सरस्वती अलीगढ़ (उ०प्र०)
१२. श्री मनोहरजी विद्यालंकार दिल्ली
१३. श्री सरस्वतीप्रसादजी गोयल सवाई माधोपुर (राज०)
१४. डॉ० श्री बलवन्तसिंहजी आर्य बीकानेर (राज०)
१५. श्रीमती सुवीराजी अंबेसंगे उद्गीर (महा०)
१६. डॉ० श्री रामावतारजी सिंहल मेरठ (उ० प्र०)
१७. श्री अशोकजी-गजेन्द्रजी गौतम जीन्द (हरि०)
१८. राव श्री हरिश्चन्द्रजी आर्य नागपुर (महा०)
१९. सुश्री उमाजी भल्ला अम्बाला छावनी (हरि०)
२०. श्री रामेश्वरदयालजी गुप्ता नई दिल्ली
२१. श्री ओम्प्रकाशजी अग्रवाल उज्जैन (म० प्र०)
२२. श्रीमती विमलाजी गुप्ता ब्यावरा (म० प्र०)
२३. श्री बृजकिशोरजी मित्तल कोटा (राज०)
२४. श्रीमती सुमनजी आर्या, श्री सदानन्दजी वानप्रस्थ फर्रुखाबाद (उ०प्र०)
२५. श्री शत्रुघ्नजी, श्रीमती सुशीलाजी गुप्ता राँची (झारखण्ड)
२६. श्री दयालदासजी आहूजा रायपुर (छत्तीसगढ़)
२७. श्री सत्यकुमारजी आर्य हरिद्वार (उत्तरा०)
२८. श्री देवकीनन्दनजी गुप्ता नई दिल्ली
२९. श्री रमेशदत्तजी दीक्षित गाधी (उ०प्र०)
३०. डॉ० श्री रविशंकरजी अमरोहा (उ०प्र०)
३१. श्री शिवकुमारजी शिक्षक धामपुर (उ०प्र०)
३२. श्री अनिलकुमारजी आर्य बुलन्दशहर (उ०प्र०)
३३. श्री दयालभाईजी आर्य भरतपुर (राज०)
३४. डॉ० श्री अशोककुमारजी गुप्ता बेगुसराय (बिहार)

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास का मुखपत्र

वैदिक पथ

धार्मिक, सामाजिक, मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष-१०, अंक-५
सृष्टिसंवत्-
१,९७,२९,४९,११८
विक्रम-सम्वत्-२०७४
दिसम्बर, २०१७
दयानन्दाब्द-१९३
हिण्डौन सिटी, पृष्ठ-४८

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रभाकरदेव आर्य के लिए वर्द्धमान ऑफसेट प्रिन्टर्स, एच-७७, इण्डस्ट्रियल एरिया, हिण्डौन सिटी (करौली) में मुद्रित एवं श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास ब्यानिया पाडा, हिण्डौन सिटी (राज०) से प्रकाशित।

चल० : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९

सम्पादक—**प्रभाकरदेव आर्य**

पंचवार्षिक शुल्क : ८०० रु०
आजीवन शुल्क : २१०० रु०
एक प्रति : १५ रु०

Email-aryaprabhakar@yahoo.com

अनुक्रम

प्रधान सम्पादक की लेखनी से

सम्माननीय आर्यनेता डॉ० सत्यपालसिंह

भारत सरकार में मानव संसाधन, जल संसाधन तथा नदी विकास एवं गंगा संरक्षण राज्यमन्त्री के रूप में चयनित डॉ० सत्यपाल सिंह से मेरा परिचय लगभग ११-१२ वर्ष पूर्व का है जब वे संयुक्त पुलिस कमिश्नर (अपराध) मुम्बई के रूप में कार्यरत थे। उत्तरकाशी में आर्यसमाज के विद्वान् परिव्राजक और साधनापथ के पथिक संन्यासी स्वामी वेदानन्द सरस्वती के नवनिर्मित आश्रम के उद्घाटन के शुभावसर पर २००६ ई० में वे पधारे थे। ज्ञातव्य है कि स्वामी वेदानन्दजी विज्ञान में स्नातक होने के बाद आर्ष पद्धति से अष्टाध्यायी-महाभाष्य निरुक्तादि शास्त्रीय ग्रन्थों को पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़ (सोनीपत-हरियाणा) में आचार्य विजयपालजी एवं पं० युधिष्ठिर मीमांसक से अध्ययन किया था। स्वामीजी के अध्ययन काल से ही मैं उनसे परिचित था। डॉ० सत्यपाल सिंह उक्त स्वामीजी के भतीजे हैं और दृढ़ वैदिकधर्मी के रूप में उनका परिवार बागपत जनपद के बसौली गाँव का निवासी है। उस उत्सव में परोपकारिणी सभा से डॉ० धर्मवीर अपनी पत्नी श्रीमती ज्योत्स्ना सहित पधारे थे। आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद की विदुषी आचार्या डॉ० प्रियंवदा वेदभारती, कन्या गुरुकुल हाथरस की आचार्या पवित्रा विद्यालंकार भी उपस्थित थीं। उद्घाटन सत्र में ही डॉ० सत्यपाल सिंह के प्रखर आर्यसामाजिक सैद्धान्तिक भाषण से सभा में उपस्थित उत्तराखण्ड के भाजपा नेता श्री भगतसिंह कोश्यारी चमत्कृत थे। उन्हें किसी उच्च पदस्थ पुलिस अधिकारी के मुख से ईश्वर और वेद के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के विचारों से आप्लावित भाषण सुनने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ था। वहाँ उपस्थित हम सभी आर्य विद्वानों, विदुषियों और ब्र० राजेन्द्र, शक्तिनगर (कार्यक्रम-संयोजक) को यह जान कर और देखकर आनन्द हुआ कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर कितनी गहरी आस्था और निष्ठा डॉ० सिंह में है। बाद में भी डॉ० सिंह से मेरा परिचय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'इन्सान की तलाश' मुझे भेंट की। दीपावलि, नववर्ष, जन्मदिवस तथा वैवाहिक वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित उनके शुभाशंसा पत्रक यथासमय मिलते रहे। सभी कार्यक्रमों में सादगी, शुचिता तथा वैदिक यज्ञों का उल्लेख रहता। मैंने अपनी कतिपय प्रकाशित पुस्तकें भी आपको यथासमय भेंट में दी हैं।

डॉ० सत्यपालसिंह उच्चशिक्षाप्राप्त प्रखर बुद्धिजीवी हैं। उन्होंने मेरठ विश्वविद्यालय से रसायनविज्ञान में एम. एस-सी., दिल्ली विश्वविद्यालय से इसी विषय में एम. फिल्., आस्ट्रेलिया से एम. बी. ए. तथा नागपुर विश्वविद्यालय से 'लोक प्रशासन' विषय में एम. ए. तथा 'नक्सलवाद' पर पी-एच. डी. की उपाधियाँ भी प्राप्त की हैं। आपके पाँच दर्जन से अधिक लेख और शोधपत्र पुलिस, सामाजिक सरोकार, सांस्कृतिक और दार्शनिक विषयों को लेकर विभिन्न पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी चार पुस्तकें प्रकाशित हैं—(1) The Search For Man, (2) Science & Spiritual-

ity, (3) Tackling Naxalism-An Indian Perspective, (4) Crime, Corruption and Development. पहली पुस्तक की एक लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं तथा यह पुस्तक चार भाषाओं—हिन्दी, उर्दू, गुजराती तथा मराठी में अनूदित और प्रकाशित हैं। वर्तमान में आप चार पुस्तकों पर कार्य कर रहें हैं—(1) Encounters with Politcians-Before Joining Politics. (2) The Challenges Before Indian Police. (3) The Timeless Time. (4) The Communal Harmony-The Roots we have ignored.

सम्मान और पुरस्कार—१. आन्ध्रप्रदेश और मध्यप्रदेश के नक्सली इलाकों में असाधारण कार्य के लिए विशेष सेवा पदक। २. १९९६ में प्रशंसनीय सेवा के लिए राष्ट्रपति पुलिस पदक। ३. १९९६ में डीजी के प्रतीक चिह्न। ४. शान्ति दूत अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार (विश्व शान्ति आन्दोलन ट्रस्ट, भारत)। ५. २००४ में प्रतिष्ठित सेवा के लिए राष्ट्रपति पुलिस पदक।

पुलिस कैरियर और पद—डॉ० सिंह १९८० बैच के महाराष्ट्र कैडर के आई.पी.एस. अधिकारी रहे हैं। १. पुलिस अधीक्षक, गडचिरोली, नासिक तथा बुलढाणा जनपद। २. पुलिस महानिरीक्षक, नागपुर रेंज। ३. संयुक्त पुलिस आयुक्त (अपराध), मुम्बई। ४. विशेष इंस्पेक्टर जनरल, कोंकण रेंज। ५. पुलिस आयुक्त, नागपुर। ६. पुलिस आयुक्त, पुणे। ७. अतिरिक्त महानिदेशक पुलिस (एडीजीपी प्रतिष्ठान और कानून एवं व्यवस्था), महाराष्ट्र। ८. पुलिस आयुक्त, मुम्बई। सर्वत्र अपनी विशिष्ट कार्यशैली के कारण एक सफल पुलिस अधिकारी के रूप में जाने-पहचाने गये। सीबीआई में भी प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत रहे।

राजनीतिक कैरियर—आप २ फरवरी २०१४ को भारतीय जनतापार्टी में शामिल हुए। १६वीं लोकसभा के लिए उत्तरप्रदेश के बागपत से भारतीय जनतापार्टी के संसद् सदस्य चुने गये। २ सितम्बर २०१७ से आपको प्रधान मन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी के मन्त्रिमण्डल में नए मन्त्री के रूप में नियुक्त किया गया है।

व्यक्तिगत जीवन—डॉ० सिंह समग्र स्वास्थ्य, योग और शाकाहार के मुखर समर्थक हैं। भारतीय संस्कृति, वैदिक दर्शन और समाजशास्त्र के बारे में आपकीविशेष रुचि है और आप आर्यसमाज के प्रति समर्पित हैं। वे नियमित रूप से आध्यात्मिकता, धार्मिक अतिवाद, अन्तर-धार्मिक सद्भाव और भ्रष्टाचार पर व्याख्यान देते रहे हैं। डॉ० सिंह ने कॉलेज के छात्रों के लिये धर्म के मिथकों को तोड़ने और वैदिक साहित्य के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए एक अभियान शुरू किया है। आपका मानना है कि वैदिक साहित्य विश्व शान्ति के लिए दिव्य सन्देश है। वे कहते हैं कि यदि वे सत्यार्थ प्रकाश न पढ़े होते तो दबे हुए मुद्दों पर चर्चा करने की क्षमता नहीं होती और सम्भवत: वह आज इस उच्च और प्रतिष्ठित पद पर भी न होते।

डॉ० सत्यपालसिंह से देश को तथा आर्यसमाज को बहुत-बहुत आशायें और अपेक्षायें हैं। हम सबको यह दृढ़ विश्वास है कि वे हम सबकी उम्मीदों पर खरे उतरेंगे तथा भारत माता के सच्चे सपूत के रूप में राष्ट्र सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित करेंगे।

—डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री

चलभाष : ९४१५१८५५२१

धर्म अफीम है। तो ?

प्राय: अनीश्वरवादी लोग कहते हैं धर्म तो एक अफीम है, एक नशा है। ऐसा नशा जो व्यक्ति की बुद्धि को खराब करता है और खराब बुद्धिवाला व्यक्ति अपना तो नुकसान करता ही है साथ ही समाज को भी भटकाता है। इन लोगों का तर्क समझ में आता है क्योंकि धर्म के नाम पर बड़े-बड़े नरसंहार हुए हैं। लाखों-लाख बेकसूर और मासूम महिला, पुरुष और बालक नृशंस तरीके से मारे गये हैं।

मेरा मन इसे सुनकर विचलित होता रहा है। अब मुझे लगता है इसपर कुछ चिन्तन कर लिया जाये। किंसी को इससे दिशा मिलकर उसकी सुदशा होती है तो यह मेरा सौभाग्य होगा। प्रथम तो यह कि जिसे धर्म कहकर धर्म माना जा रहा है वह वास्तविकता में क्या धर्म है। यदि हम सूर्य को पृथ्वी कहकर आलोचना करने लगें कि पृथ्वी तो बेकार की वस्तु है और इसमें ऐसा है, वैसा है तो यह कहनेवाला बुद्धिमान कहा जायेगा ? इसी प्रकार धर्म की परिभाषा पर खरा उतरना ही तो धर्म कहा जायेगा। धर्म की अनेक परिभाषायें की गई हैं परन्तु साधारणत: इसे समझने के लिये कहा जा सकता है कि समस्त मानव जाति में जो-जो हितकारी है वह धारण करना, अपने आचार-व्यवहार में समाहित करना ही धर्म है। अब जब प्रत्येक मनुष्य को हितकारी अर्थात् जो सबका भला करनेवाला है उसे धारण करना, उसे मानना और तदनुकूल आचरण करना धर्म है तो क्योंकर किसी के लिये अहितकर हो सकता है। अब धर्म के नाम पर किसी को बलि देना कैसे दोनों का भला करता है। इसमें एक की तो हानि हुई न। उसे कष्ट भी हुआ और उसके प्राण भी गये। इसी प्रकार एक व्यक्ति या समूह अपने को श्रेष्ठ व दूसरों का अपने से नीचा बताकर उनपर अत्याचार करे तो यह धर्म कहाँ हुआ। कहीं व्यक्ति के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर, कहीं देश के नाम पर जो श्रेष्ठता के दम्भ भरे जाकर सामनेवाले के साथ अन्याय किया जाता है वह धर्म कैसे हो सकता है।

अफीम से नशा ही होता है यह एक पक्षीय तर्क है जबकि अफीम औषधि में भी विधि अनुसार प्रयुक्त होने पर नशा नहीं शरीर को लाभ करती है। अफीम का सेवन गलत प्रकार से करना नशा देता है, हानि पहुँचाता है। इसमें अफीम का क्या दोष हुआ। दोष या लाभ तो सेवन के प्रकार में है।

हम अधिक नहीं कहकर मात्र इतना ही कहना चाहते हैं धर्म सबका भला करनेवाला है और प्रत्येक मनुष्य का एक ही है। अलग-अलग नहीं। इसमें भेद करके जो वर्ग बना लिये गये हैं वह अधर्म है और यही मानव की हानि कर रहा है। दो व्यक्तियों अथवा समूहों के मध्य दीवार खड़ी करता है वह धर्म नहीं हो सकता।

—प्रभाकरदेव आर्य

पराली से प्रदूषण नहीं, बिजली पैदा होगी

पराली से प्रदूषण नहीं बिजली पैदा होगी। राजधानी में प्रदूषण पर लगाम लगाने और यूपी, पंजाब, हरियाणा के किसानों को राहत देने के लिए सरकार ने उनसे पराली खरीदने का फैसला किया है। केंद्र इस पराली का इस्तेमाल बिजली बनाने के लिए करेगा।

धान की फसल कटने के बाद खेतों में बचे अवशेष (पराली) के निस्तारण की समस्या का समाधान करते हुए सरकार ने इसे बड़ा बाजार मुहैया कराने की दिशा में कदम उठाया है। अब थर्मल पावर स्टेशनों में ईंधन के तौर पर कोयले के साथ १० फीसदी पराली जलाई जाएगी। एनटीपीसी जल्द ही पराली खरीद के लिए टेंडर जारी करेगी। बिजली मंत्री आर के सिंह ने कहा कि थर्मल पावर स्टेशनों में ईंधन के तौर पर पराली के इस्तेमाल से प्रदूषण की समस्या कम होगी, वहीं किसानों को फायदा होगा। एनटीपीसी ५५०० रुपये प्रति टन के हिसाब से पराली के टुकड़े खरीदने के लिए टेंडर जारी करेगी। साथ ही सरकार सभी पावर स्टेशनों में पराली इस्तेमाल को अनिवार्य करने जा रही है।

११ हजार रुपये मिलेंगे—आरके सिंह ने कहा कि एक एकड़ में करीब दो टन पराली होती है। ऐसे में किसानों को ११ हजार रुपये प्रति एकड़ का फायदा होगा। पराली का बाजार तैयार कर सीधे तौर पर या किसी सेवा प्रदाता के साथ समझौता कर बोली लगा सकते हैं।

किसानों को विकल्प मिला—दिल्ली-एनसीआर में प्रदूषण का एक बड़ा कारण पराली जलाना है। जानकार मानते हैं कि किसानों के पास विकल्प नहीं होने से वे खेतों को खाली करने के लिए पराली जलाते हैं, ताकि अगली बुआई कर सके। लेकिन इस फैसले से किसानों को विकल्प मिला है।

मिस्र : मस्जिद में धमाके, २३५ लोगों की मौत, १०० जख्मी

मिस्र के उत्तरी सिनाई की एक मस्जिद में शुक्रवार को नमाज के दौरान धमाकों और गोलीबारी में २३५ लोगों की मौत हो गई और १०० से ज्यादा लोग घायल हो गए। मिस्र की सरकारी एजेंसी 'मीना' के मुताबिक अलएरिश के अल रवादा मस्जिद में जुमे की नमाज के दौरान कई बम धमाके हुए। हमलावरों ने मस्जिद में पहले से ही विस्फोटक लगा रखे थे। विस्फोट के बाद इधर-उधर भाग रहे लोगों पर चार गाड़ियों में सवार बंदूकधारियों ने गोलीबारी शुरू कर दी। घटनास्थल पर चारों ओर खून से लथपथ शव दिखाई दे रहे थे। ५० एंबुलेंस हताहतों को ले जाने के लिए लगाई गईं। बम धमाकों से मस्जिद को काफी नुकसान हुआ है। यह मिस्र में हुए बड़े आतंकी हमलों में से एक है।

हरियाणा में बेटा देकर गोद ली बेटी

समाज वाकई बदल रहा है। इसके साथ बदल रही है लोगों की सोच और बेटियों के प्रति नजरिया। वह भी ऐसे समाज के लोगों का, जहाँ बेटों की चाह में बेटियों को कोख में ही मार दिया जाता है। यह स्याह सच कहीं-कहीं झूठ भी साबित हो रहा है। इस सच्चाई के दूसरे पहलू को समझना है तो किरढान चले आइए। यहाँ एक दंपती ने बेटी की चाह में दूसरे बच्चे को जन्म देने का फैसला लिया। पर, इस बार भी बेटा ही पैदा हुआ। मगर इस दंपती ने मिसाल कायम करते हुए अपने नवजात बेटे के बदले बेटी गोद ले ली। सुखद यह कि उनका बेटा जिनकी गोद में गया है, उनकी भी चाहत पूरी हो गई। दूसरा परिवार हिसार के गाँव किशनगढ़ का रहने वाला है। दोनों परिवार एक ही समाज से हैं, लेकिन आपस में पहले से कोई रिश्तेदारी व जान-पहचान नहीं थी। अस्पताल में ही दोनों परिवारों का परिचय हुआ। मगर आज दोनों परिवारों के बीच गहरा रिश्ता कायम हो गया है।

हुआ यूँ कि भट्टूकलां के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में गाँव किशनगढ़ (हिसार) निवासी भूपसिंह की पत्नी रेनू को डिलीवरी के लिए लाया गया था। रेनू के पहले से तीन बेटियाँ हैं। उनकी हसरत थी कि बेटियों का एक भाई हो। मगर ११ नवंबर को डिलीवरी हुई तो घर में लक्ष्मी आई। अगले दिन महिला को अस्पताल से छुट्टी भी मिल गई। इसके दो दिन बाद १४ नवंबर को किरढ़ान निवासी सीता पत्नी अनूप सिंह ने बेटे को जन्म दिया। हालांकि परिवार की इच्छा बेटी की थी। सीता के ससुर लालचन्द ने बताया कि चाह थी कि उसके घर पोती जन्म ले। इसी बीच उन्हें पता चला कि किशनगढ़ के परिवार को बेटा चाहिए था। बस, यहीं से उनके मन में नई उमंग पैदा हुई। अनुप सिंह के परिवार ने भूप सिंह से संपर्क किया। अनूप ने भूप सिंह की लड़की गोद ले ली और अपना नवजात बेटा भूप को गोद दे दिया।

पीड़ित परिवारों में १.७१ करोड़ बांट कैदियों ने किया प्रायश्चित

जिसकी हत्या के आरोप में कैदी जेल में बंद हैं, उसके परिवार को अब तक अपनी कमाई की एक तिहाई राशि यानी कुल १.७१ करोड़ रुपये देकर कैदियों ने प्रायश्चित किया है। सश्रम कारावास की सजा पा चुके ऐसे कैदियों के लिए २०१४ में झारखंड की जेलों में ६४८ बंदियों ने पसीने बहा पांच करोड़, १४ लाख, ५२ हजार ६८२ रुपये कमाए। उनकी इस राशि का एक तिहाई हिस्सा यानी एक करोड़, ७१ लाख ५० हजार ८९४ रुपये पीड़ित परिवारों में बांटे जा चुके हैं।

अनोखी बागवानी के लिए आठवीं बार गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में नाम

उत्तरी दिल्ली के केशवपुरम क्षेत्र के निवासी मदन गोपाल कोहली ने पर्यावरण के क्षेत्र में अपने योगदान से सभी को प्रेरित किया है। छोटे से घर की छत पर उन्होंने कई किस्मों के पौधे उगाए हैं, जिसमें फल, फूल, औषधि और पत्तियों वाले विभिन्न किस्म के पौधे शामिल हैं। उनके इस प्रयास और महज २५ वर्ग मीटर की छोटी सी जगह में हजारों की संख्या में पौधे लगाने के अनूठे योगदान के लिए लगातार

सात बार पर्यावरण के क्षेत्र में गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड में नाम दर्ज कराया। अब इस क्षेत्र में एक कदम और बढ़ाते हुए उन्हें आठवीं बार भी इसके लिए चयनित किया गया है।

बागवानी के क्षेत्र में अपनी लगन और प्रयासों का लोहा मनवा चुके कोहली उन सभी युवाओं के लिए प्रेरणा हैं जो पर्यावरण के क्षेत्र में कुछ अलग करना चाहते हैं। उनके अनुसार प्रदूषण को दूर करने के लिए बागवानी से बेहतर और कुछ भी नहीं।

बागवानी की मिसाल बनकर लोगों को दे रहे प्रेरणा—केशवपुरम स्थित अपने घर की छत पर ही २५ वर्ग मीटर की जगह पर करीब २० हजार पौधे लगाए हुए हैं। जिसमें फूल-फल, सब्जियों के साथ औषधि के पौधे भी शामिल हैं। मौसम चाहे कोई भी हो वह अपने द्वारा लगाए गए सभी पौधों को सूखने नहीं देते। इसके लिए वह हर संभव प्रयास करते हैं। सुबह शाम पानी देने के साथ वह इसकी नियमित देखभाल भी करते हैं। उनके अनुसार यह जरूरी नहीं कि बागवानी के लिए बड़ी जगह या अधिक पैसे हों, इसके लिए एक छोटी सी कोशिश कर भी पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाई जा सकती है। उनके घर में ३५ वर्ष पुराने भी पौधे हैं। जिसे उन्होंने थैली और टोकरी व जूट की बोरियों में लगाया हुआ है।

बेकार सामानों का इस्तेमाल—मदन गोपाल के रूफ गार्डन की खासियत यह है कि यहाँ उन्होंने पेड़-पौधों को लगाने के किसी महंगे गमले का नहीं बल्कि उन्हीं चीजों का प्रयोग किया जो आमतौर बेकार हो जाते हैं। इसमें सीमेंट के कट्टे, पॉलिथीन बैग, सीमेंट के पुराने पाइप का टुकड़ा, बेकार के पुराने डिब्बे, बोतलें, प्लास्टिक की टूटी-फूटी टोकरियां, पुराने टीन के बक्से वगैरह शामिल हैं। इसी तरह वह पौधों में पानी देने के लिए घर के बेकार पानी को ही प्राथमिकता देते हैं जिसके लिए वह सब्जी धोने के बाद हुआ पानी और घर की सफाई के बाद बचे हुए पानी का प्रयोग करते हैं।

विभिन्न किस्मों के पौधे—छत की इस बागवानी में विभिन्न प्रकार के पौधे मौजूद हैं। इसमें किचन गार्डन, हर्बल गार्डन व औरनमिंटल गार्डन शामिल है। किचन गार्डन में हरी मिर्च, शिमला मिर्च, हल्दी, नींबू, बैंगन, तुरई, सीताफल, लौकी, लोबिया व मकई जैसे पौधे लगाए हैं।

वही फलों में आम, अमरूद, काले अंगूर, पपीता, अनार, चीकू व ईख के पौधे लगाए हैं जिसे वह बोनसाई विधि से उगा रहे हैं। दूसरी तरफ इस छोटे से गार्डन में शीशम, बरगद और पीपल के पेड़ भी मौजूद हैं। फूलों के बारे में उनका दावा है कि गुलाब, चंपा, चमेली व लिली के अलावा कई विदेशी फूल भी उनकी बागवानी में हैं जिनकी करीब ३५ वैराइटी मौजूद है।

तीन तलाक पर फैसला लागू कराने के लिए नई पार्टी

हैदराबाद की एक बड़ी कारोबारी महिला नौहेरा शेख ने बाकायदा नई पार्टी का ऐलान किया है। ऑल इंडिया महिला इंपावरमेंट पार्टी (एआइएमईपी) के ११ उद्देश्यों में तीन तलाक पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले का क्रियान्वयन सुनिश्चित कराना भी शामिल है। पार्टी ने केंद्र सरकार से भी मांग की कि फैसले के क्रियान्वयन के लिए निगरानी व्यवस्था स्थापित करे। मुस्लिम समेत अन्य महिलाओं के समर्थन का दावा करने वाली यह पार्टी आगामी कर्नाटक विधानसभा चुनावों से मैदान में उतरेगी।

मुस्लिम महिला उद्यमी नौहेरा शेख के चुनावी मैदान में उतरने से असदुद्दीन ओवैसी की चुनौतियां बढ़ गई हैं। ओवैसी मुस्लिम वोटों के सहारे ऑल इंडिया मजलिस ए इत्तेहादुल मुस्लिमीन (एआइएमईएम) के देशव्यापी विस्तार की कोशिश में जुटे हैं। उनकी पार्टी बिहार, उत्तर प्रदेश और असम तक कई राज्यों में चुनाव भी लड़ चुकी है। लेकिन नौहेरा शेख के आने के बाद अपने घर को बचाना उनके लिए आसान नहीं होगा। नौहेरा शेख ने इसे छुपाया भी नहीं। पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि ओवैसी केवल मुसलमानों की राजनीति करते हैं और उनकी पार्टी में महिलाओं के लिए कोई जगह नहीं है। वहीं, नई पार्टी समाज के सभी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए बनाई गई है और यह धर्म, संप्रदाय और जाति के आधार पर राजनीति नहीं करेगी।

चुनाव आयोग में एआइएमईपी को पंजीकृत करा चुकीं नौहेरा शेख ने कहा कि कर्नाटक विधानसभा चुनाव में उनकी पार्टी सभी सीटों पर उम्मीदवार खड़े करेगी और २०१९ के लोकसभा चुनाव में पूरे देश में लड़ने का इरादा है। जाहिर है इससे कांग्रेस और एआइएमईएम ही नहीं बल्कि मुस्लिम वोट बैंक के सहारे राजनीति करने वाली दूसरी पार्टियों को भी चुनौती का सामना करना पड़ेगा। नौहेरा शेख मुस्लिम महिलाओं के साथ-साथ मुस्लिम वोट बैंक में बड़ी सेंध लगा सकती हैं। नई पार्टी भले ही महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए बनी हो, लेकिन इसमें २० फीसद स्थान पुरुषों को भी मिलेगा। इसका उद्देश्य महिला सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित कर महिलाओं के विकास के लिए काम करना है।

भारतवंशी मिली बनर्जी बनी ब्रिटेन की पुलिस संस्था की प्रमुख

ब्रिटेन में भारतवंशी कारोबारी को पुलिस की संस्था कॉलेज ऑफ पुलिसिंग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। कोलकाता में जन्मी मिली बनर्जी इस पेशेवर संस्था का कामकाज देखेंगी।

७१ वर्षीय बनर्जी पुलिस से जुड़े सभी अधिकारियों और कर्मचारियों को जरूरी कौशल और जानकारी उपलब्ध कराना सुनिश्चित करेंगी। बनर्जी ने कहा कि हम रोजमर्रा में बहादुरी, समर्पण और सहानुभूति दिखाने वाली पुलिस को सर्वश्रेष्ठ कौशल और जानकारी उपलब्ध कराने को समर्पित हैं। इस संबंध में हमारे पास महत्वाकांक्षी योजनाएं हैं। उन्होंने कहा कि वह इस पेशेवर संस्था के निर्माण के लिए मदद देने वाले सभी अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ काम करने की इच्छुक हैं।

संस्कार पद्धति को ऋषि दयानन्द की देन

—डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री

आधुनिक युग के वैदिक ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ संस्कारविधिः में संस्कार–महत्त्व को इस प्रकार वर्णित करते हैं— "शरीर और आत्मा की विशुद्धि के लिए परम आदरपूर्वक वेदादिशास्त्रों के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर आर्यों के ऐतिह्य (इतिहास) को भी विचारकर विद्वानों को संस्कार का आयोजन करने के लिए उद्यम करना चाहिए। संस्कारों से संस्कृत जो भी व्यक्ति या वस्तु होगी उसे मेध्य या पवित्र कहा जाता है। इसी प्रकार लोक (संसार) में जो भी व्यक्ति या वस्तु असंस्कृत हो उसे अमेध्य या अपवित्र माना जाता है। यह संस्कार शिक्षा और ओषधि के द्वारा किया जाता है जिससे नित्य ही सर्वथा सुखों की वृद्धि होती है।"[१]

बालक को संस्कारित करना नित्यप्रति की प्रक्रिया है, जिसमें सुशिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसमें भोजन–छादन से लेकर शिष्टाचार, व्यवहार, सद्ज्ञान, सत्क्रिया और दार्शनिक–सैद्धान्तिक विचारों तक का परिग्रहण है। पुनरपि जीवन के विभिन्न मोड़ पर कुछ धार्मिक क्रिया–कलाप का करना भी 'संस्कार' कहलाता है, जिसे प्रथा, रीति–रिवाज भी कहते हैं, उन प्रथाओं की निष्पत्ति में केवल कर्मकाण्ड (Ritual) ही नहीं होता, उसमें सुशिक्षा और अर्थपूर्ण प्रयोजन भी निहित होता है।

संस्कारों की संख्या

भारतवर्ष में प्राचीन वैदिककाल से ही संस्कारों का प्रचलन रहा है। मनुस्मृति और वेदाङ्ग साहित्य के कल्पशास्त्र में बहुविध संस्कारों का वर्णन है। संस्कारों की संख्या भी न्यूनाधिक है। विस्तारप्रिय आचार्यों (कतिपय गृह्यसूत्रकारों तथा निबन्धकारों) ने ४८ अड़तालीस संस्कारों का उल्लेख किया है तो न्यूनतम १० दस संस्कारों का भी विधान है। स्वामी दयानन्द सरस्वती १६ सोलह संस्कार मानते हैं। सोलह संस्कारों के निर्धारण में भी स्वामीजी की ऊहा और औचित्य दोनों के दर्शन होते हैं। मनुस्मृति तथा पारस्कर गृह्यसूत्र में १४ चौदह, आश्वलायन तथा मानव गृह्यसूत्र में १३ तेरह, कौषीतकि (शांखायन), आपस्तम्ब तथा गोभिलगृह्यसूत्र में १२ बारह, गोपथ ब्राह्मण तथा जैमिनीय गृह्यसूत्र में ११ ग्यारह तथा हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र में १० दस संस्कारों का वर्णन है।

किसी गृह्यसूत्रकार ने वानप्रस्थ तथा संन्यास को संस्कारों में परिगणित नहीं किया है। इसका कारण यह है कि गृह्यसूत्र गृहस्थ आश्रमी द्वारा किये जाने वाले संस्कारों का वर्णन करते हैं। वानप्रस्थ और संन्यास का गृह्यकर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः इनका विधान गृह्यसूत्रों में नहीं मिलता। ब्राह्मण, आरण्यक तथा स्मृति–साहित्य में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का

और उनके कर्त्तव्यों का विशद वर्णन है। स्वामीजी ने ये दोनों संस्कार इन्हीं ग्रन्थों के आश्रय से लिये हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश वेदारम्भ संस्कार द्वारा होता है तथा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश विवाह-संस्कार द्वारा होता है। अतः वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में प्रवेश के समय क्रमशः वानप्रस्थ और संन्यास संस्कार का विधान करना भी समुचित प्रतीत होता है। गृह्यसूत्रों में प्रथम संस्कार के रूप में विवाह संस्कार तथा अन्तिम संस्कार समावर्त्तन संस्कार को माना गया है। आश्वलायन तथा कौशिक गृह्यसूत्र को छोड़कर अन्त्येष्टि कर्म (संस्कार) का भी कहीं वर्णन नहीं है। स्वामीजी संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान से करते हैं तथा समापन अन्त्येष्टि संस्कार के साथ। इसका कारण सम्भवतः यह है कि स्वामीजी की दृष्टि में संस्कारों का सम्बन्ध मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उसके सम्पूर्ण जीवनकाल से है। जीवात्मा का शरीर के साथ संयोग का नाम **जन्म** और जीवात्मा का शरीर से वियोग का नाम **मृत्यु** है। अतः जीवात्मा का शरीर से संयोग के काल को गर्भाधान के नाम से प्रथम संस्कार तथा जीवात्मा का शरीर से वियोग (मृत्यु) के अनन्तर मृत शरीर का सम्मानपूर्वक और्ध्वदैहिक कर्म अन्त्येष्टि संस्कार अन्तिम सोलहवाँ संस्कार है। स्वामीजी के इस विचार की पुष्टि मनुस्मृति के इस वचन[२] से भी होती है, जिसमें यह कहा गया है कि—''गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कारों का वेदमन्त्रों द्वारा विधान वर्णित है।'' अतः स्वामीजी ने गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त १६ सोलह संस्कारों की संख्या को मान्यता प्रदान की है।[३]

उपरिवर्णित गृह्यसूत्रों तथा मनुस्मृति में उल्लिखित प्रायः सभी संस्कारों को स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया है। केशान्त या गोदान नामक संस्कार को स्वामीजी ने छोड़ दिया है जो वेदारम्भ के पश्चात् तथा समावर्त्तन से पूर्व किया जाता है। विचार करने पर यह उचित भी प्रतीत होता है। क्योंकि यह संस्कार मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण के १६ सोलहवें वर्ष में, क्षत्रिय के २२ बाइसवें तथा वैश्य के २४वें वर्ष में किया जाता है। केशान्त संस्कार की विधियाँ चूडाकरण या मुण्डन संस्कार के समान ही है अन्तर केवल इतना ही है कि चूडाकर्म (मुण्डन) में शिर के बाल मूँड़े जाते हैं और केशान्त में शिर, दाढ़ी, मूँछ और कक्ष आदि के सभी बाल मूँड़े जाते हैं। केशान्त के लिए 'गोदान' शब्द का प्रयोग पारिभाषिक है। 'गोदान' शब्द का अर्थ पारस्कर गृह्यसूत्र के टीकाकार हरिहर और गदाधर के अनुसार 'शिरःप्रदेश का केशसमूह' है। इस संस्कार की दक्षिणा में आचार्य को गोदान दिया जाता है। इस संस्कार के सम्बन्ध में सबसे विचित्र बात यह कही गई है कि इस संस्कार के बाद १ एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करें और केशवपन न कराये। वैकल्पिक स्थिति यह है कि १२ बारह दिन अथवा ६ छह दिन अथवा ३ तीन तक तो ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य

करें।[४]

वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्यकुल में विद्याध्ययन पर्यन्त निवास करता है। विद्या समाप्ति के बाद समावर्तन संस्कार किया जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में सुविधानुसार जटाधारी या मुण्डित रहने का विधान है। साथ ही ब्रह्मचर्य-आश्रम में रहते समय पूर्ण विद्याप्राप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत पालन का निर्देश है। ऐसी स्थिति में मध्य में केशान्त संस्कार का विधान और उसके बाद एक वर्ष, छह माह, बारह दिन, छह दिन या तीन दिन तक ब्रह्मचर्य पालन का क्या औचित्य है? अतः स्वामीजी ने इस संस्कार का विधान अनुचित समझकर इसे संस्कारों में स्थान नहीं दिया। इसी प्रकार कौषीतकि (शांखायन) गृह्यसूत्र में विवेचित 'गर्भरक्षण' संस्कार (जिसे पुंसवन के बाद चतुर्थमास में किया जाता है) की भी कोई खास उपयोगिता नहीं है, इसका कार्य पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार के अन्तर्गत आ जाता है। १९३२ वि० (१८७५ ई०) से लेकर आज [२०७४ वि० सं० (२०१७ ई०)] तक १४२ वर्षों की अवधि में ऋषि दयानन्द विरचित 'संस्कारविधिः' का इतना व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है कि उसके प्रभाव से जनसामान्य से लेकर विद्वज्जगत् तक संस्कारों की संख्या १६ सोलह ही मानी जा रही है। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार की प्रतियोगी परीक्षाओं में भी संस्कारों की संख्या विषयक प्रश्न का उत्तर १६ सोलह ही समुचित माना गया है।

संस्कारविधिः का उपक्रम

वैदिक-धर्म के प्रचारार्थ कार्यक्षेत्र में उतरने के प्रारम्भिक दिनों में ही स्वामीजी से अनेक महानुभावों ने संस्कार विषयक ग्रन्थ निर्माण करने की प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी थी। 'संस्कारविधिः' के प्रथम तथा द्वितीय संस्करण की भूमिका में स्वामीजी ने इसका उल्लेख किया है। भूमिका के प्रारम्भिक श्लोकों में इसके कारणों का भी स्वामीजी निर्देश करते हैं—''ग्रन्थ-ग्रन्थन में तत्पर वेदविज्ञान से विहीन स्वार्थी पण्डितों ने संस्कार-पद्धति-परक अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उन अनार्ष ग्रन्थों को वेद प्रमाण से निरसन=खण्डन (अनादृत) करके सभी जनों के सुखबोध और उपकारार्थ 'उत्तम संस्कारविधिः' की रचना की जा रही है। सम्पूर्ण मानव समाज के लिए प्रियकारक=आनन्ददायक संस्कार की पद्धति के निर्माणार्थ बहुत से सज्जनों की प्रेरणा (अनुरोध) से मैं इस 'संस्कारविधिः' ग्रन्थ के लिखने के लिए उद्यत हुआ हूँ।''[५]

स्वामीजी का संकेत संस्कारों के आकर ग्रन्थ गृह्यसूत्रों में वर्णित आह्निक एवं कर्मकाण्डीय कृत्यों की उन अवैज्ञानिक वेदविरुद्ध पद्धतियों की ओर है जिनका कोई औचित्य नहीं है। जैसे 'शूलगव' में साण्ड (बैल) का हनन लिखा है (पारस्करगृह्यसूत्र ३।८, आश्वलायन गृह्यसूत्र ४।९)।

'अष्टका कर्म' में गोमांस से हवन तथा मद्य (शराब) से तर्पण का वर्णन है (पारस्कर गृ०सू० ३।३, आश्वलायन गृ०सू० २।४, शाङ्खायन गृ०सू० ३।१२, गोभिल गृ०सू० ३।१०, जैमिनीय गृ०सू० २।३)। 'अवकीर्णि प्रायश्चित्त' में गधे को मारकर उसकी चमड़ी को ओढ़ना लिखा है—पारस्कर गृ०सू० ३।१२)। भाग जाने वाले दास (नौकर) को वश में करने के लिए पशु के सींग पर मूत्र को डालकर, फिर उसे अपने सोये हुए दास पर छिड़कने का विधान किया है—(पारस्कर गृ०सू० ३।७)। इसका नाम 'उतूल परिमेह' रखा है। स्त्री-वशीकरण हेतु 'कौशिक सूत्र' (कण्डिका ३६) में अनेक प्रकार की घृणित क्रियाएँ लिखी हैं।[६]

अतः स्वामीजी को संस्कारों की विधि वेदानुकूल, बुद्धि-तर्कयुक्त, शिष्टजनों के सदाचार से समन्वित बनाने के लिए बहुत ही परिश्रम करना पड़ा है। 'संस्कारविधिः' के अनुशीलन तथा गृह्यसूत्रों से उसका तुलनात्मक अध्ययन करने से स्वामीजी की ऊहा, पाण्डित्य और आर्ष प्रतिभा पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है।

स्वामीजी ने सब संस्कारों में समान रूप से किये जाने वाले विधि भाग को संस्कारविधिः के प्रारम्भ में रखा है और उसका नाम 'सामान्यप्रकरण' रखा है, जिससे इन विधियों को प्रति-संस्कार में बार-बार पुनरावृत्ति न करनी पड़े। प्रत्येक संस्कार के आरम्भ में तत्तत् संस्कार के उपदेशार्थ वेदादि आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण-वचन तथा उस-उस संस्कार के प्रयोजनों को लिखा गया है। उसके पश्चात् उस संस्कार की कर्त्तव्यविधि का क्रमपूर्वक वर्णन करने के बाद, उस संस्कार के शेष विषय जो अग्रिम संस्कार से पूर्व तक करने चाहिए, उन्हें लिखा है। इस प्रकार ३ तीन स्तर प्रत्येक संस्कार के बनते हैं।[७]

संस्कारविधि की एक बड़ी विशेषता यह है कि विधिभाग में वेद तथा आर्षग्रन्थों के मन्त्र ही विनियुक्त किये गये हैं लौकिक वाक्यों का तिरस्कार किया गया है। जैसे—शास्त्रीय मर्यादा है—**'आचान्तेन कर्म कर्त्तव्यम्'** (मीमांसाभाष्य १।३।५ में उद्धृत)। अर्थात् आचमन से यज्ञ कर्म का प्रारम्भ करना चाहिए। पता नहीं कितने वर्षों से पौराणिक पद्धति में आचमन में लौकिक वाक्यों का प्रयोग होता चला आ रहा है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजा प्रकाश' में आचमन-कर्म में इन लौकिक वाक्यों को बोला जाता है—**"ओं केशवाय नमः। ओं नारायणाय नमः। ओं माधवाय नमः"** (पृ० १८, १०वाँ संस्करण, २०१३ वि०सं०)। सभी सनातनी पौराणिक विद्वान् विवाह आदि संस्कारों में भी इन्हीं वाक्यों को बोलकर आचमन कराते हैं। स्वामीजी ने आश्वलायन गृह्यसूत्र में उल्लिखित (१।२४।१२, २१, २२) **"ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा। ओम् अमृता-पिधानमसि स्वाहा। ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।"** इन तीन मन्त्रों को आचमन में विनियुक्त किया है। यह रूपसमृद्ध विनियोग

है। 'अमृत' पद जल तथा परमेश्वर का वाचक है। इसके स्थान पर बोला जाने वाला 'ओं केशवाय नमः' प्रभृति लौकिक संस्कृत वाक्यों की क्या उपयोगिता है? उसके अर्थ का आचमन कर्म से कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। यह पौराणिक पद्धति किस प्रकार 'सनातन पद्धति' हो सकती है?

पौराणिक-पद्धति में संस्कारों के अन्तर्गत 'स्वस्तिवाचन' के कतिपय मन्त्रों का विनियोग है, किन्तु उसमें अथर्ववेद तथा सामवेद के मन्त्र नहीं हैं। स्वामीजी ने 'स्वस्तिवाचन' के साथ ही 'शान्तिकरण' नामक मन्त्रों के पाठ का भी विधान किया है। इन दोनों में चारों वेदों के मन्त्र संकलित किये गये हैं तथा चारों वेदों के आरम्भिक मन्त्र भी इसमें सम्मिलित हैं। पौराणिक पण्डित स्वस्तिवाचन तथा सन्ध्या में अथर्ववेद के मन्त्र नहीं बोलते। स्वामीजी चारों वेदों को एक समान महत्त्व देते हैं अतः 'सन्ध्या' में भी 'मनसा-परिक्रमा' की विधि में अथर्ववेदीय 'ओं प्राची दिगग्निः'..... प्रभृति (अथर्ववेद ३।२७।१-६) छह मन्त्रों का विधान करते हैं।

स्वामीजी की 'संस्कारविधिः' में एक प्रकरण और है जिसका उल्लेख किसी गृह्यसूत्रादि संस्कारपरक ग्रन्थ में नहीं है वह प्रकरण है—

"**अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः**"। इसके अन्तर्गत स्वामीजी ने परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना विषयक ८ आठ मन्त्रों को संकलित किया है और उसकी अतिशय भक्तिपरक, आह्लादक तथा सामान्यजनों के लिए अर्थगम्य मनोरम व्याख्या की है। स्वामीजी सभी संस्कारों, यज्ञादि उत्सवों तथा पर्व आदि अवसरों पर इन मन्त्रों का पाठ तथा उसके गम्भीर अर्थों पर विचार करके परम पिता परमेश्वर का ध्यान और उपासना का विधान करते हैं। स्वामीजी के शब्द इस प्रकार हैं—"सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करे। और सब लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें।"

'संस्कारविधिः' की भूमिका का समापन स्वामीजी के शब्दों में इस प्रकार है—"जिस करके (अर्थात् संस्कारों को करने से) शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

स्वामी दयानन्द और पुंसवन संस्कार

इस सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य करने का तथ्य यह है कि प्राचीन गृह्यसूत्रकारों ने पुंसवन संस्कार का प्रयोजन पुमान् अर्थात् पुरुष के जन्म से माना है।[८] किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार इस संस्कार का प्रयोजन पूर्वाचार्यों से बिल्कुल ही भिन्न है। उनके अनुसार पुंसवन

संस्कार का उद्देश्य पति के पुरुषत्व अर्थात् वीर्यलाभ से है। स्वामीजी की मान्यता है जब तक बालक का जन्म न हो जाय और जन्म के पश्चात् भी दो महीने न बीत जायें तब तक पति को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और स्वप्न में भी वीर्य नाश न होने देना चाहिए।[९] स्वामीजी ने पुंसवन संस्कार के प्रमाण में सामवेदीय मन्त्र ब्राह्मण (१।४।८-९), अथर्ववेद (६।११।१-३) के मन्त्रों को उद्धृत करने के बाद स्पष्टतः यह लिखा है—''इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिए।''[१०]

इससे यह भली-भाँति स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द स्त्री-पुरुष के भेदभाव के घोर विरोधी हैं। जब कि अन्य आचार्यों के अनुसार पुंसवन संस्कार का अर्थ पुत्र की कामना करना बालिकाओं के प्रति अन्याय तथा कन्या-जन्म को हेय दृष्टि से देखना है। जब संस्कारों का उद्देश्य सन्तानों को सुशिक्षित और सुसंस्कृत करना माना जाता है, फिर यह कैसा संस्कार हुआ कि जिसके द्वारा कन्या के जन्म की इच्छा ही न की जाय (तब तो कन्याओं की शिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता)। स्वामी दयानन्द की पुंसवन संस्कारविषयक यह क्रान्तिकारी परिभाषा स्त्री के प्रति भेदभाव को जड़-मूल से मिटाती है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार

शिशु उत्पन्न होने के पूर्व तथा गर्भाधान के पश्चात् किए जाने वाले संस्कारों में दो संस्कार—(१) पुंसवन और (२) सीमन्तोन्नयन हैं। इन दोनों में भी सीमन्तोन्नयन अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका काल भी चौथे मास से आठवें मास तक है। सीमन्तोन्नयन का भाव और उद्देश्य गर्भस्थ बालक के चौथे महीने से लेकर आठवें महीने तक सम्पूर्ण कार्य-कलापों पर आधारित है। गर्भावस्था में बालक के अति-कोमल मन-मस्तिष्क पर सात्त्विक संस्कार डालने के लिए अनेक विधि-विधान आर्ष ग्रन्थों में पाये जाते हैं जिसमें मुख्यतः धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, मनुस्मृति तथा आयुर्वेदीय ग्रन्थों के निर्देश महत्त्वपूर्ण हैं। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों के जीवन तथा रामायण-महाभारत जैसे प्रसिद्ध महान् ऐतिहासिक काव्यों के अनेक आख्यान (कथानक) गर्भावस्था के संस्कारों की महत्ता के प्रतिष्ठापक हैं। महान् धनुर्धारी अर्जुन की आदर्श पत्नी सुभद्रा के गर्भ में पलने वाले बालक वीर अभिमन्यु की धनुर्वेद प्रवीणता तथा चक्रव्यूह भेदन की अभिज्ञता गर्भगत संस्कार के कारण ही हुई। यह कथा भारत में आबालवृद्ध वनिता के जुबान पर है। इस सन्दर्भ में प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के महत्त्वपूर्ण प्रमाण तथा आधुनिक विद्वानों के मन्तव्यों का सार प्रस्तुत किया जा रहा है—

सुश्रुत के अनुसार ''जो गर्भिणी स्त्रियाँ विद्वान् और ब्राह्मणों का सत्संग करने वाली हैं, जो पवित्रता और सदाचार से रहने वाली हैं उनकी सन्तान

महागुणवान् होती है, यदि इनसे विपरीत आचरण वाली होंगी तो सन्तान भी साधारण होगी।''[११]

सुश्रुत के इसी सिद्धान्त की पुष्टि महर्षि मनु ने भी की है—

''गर्भवती स्त्री जिस पदार्थ अथवा दृश्य को मन में बसा लेती है, उसकी जैसी आकृति होती है, उसी प्रकार की वह सन्तान उत्पन्न करती है। सन्तान को विशेष रीति से शुद्ध करने के लिए आवश्यक है कि स्त्रियों की रक्षा में पूर्ण प्रयत्न किया जाये।''[१२]

निष्क्रमण संस्कार

निष्क्रमण संस्कार में बालक के दक्षिण कान में मन्त्र जप करने का विधान है। संस्कारों के सम्बन्ध में आकर ग्रन्थ पारस्कर गृह्यसूत्र का मत यह है कि यदि बालिका का निष्क्रमण संस्कार हो रहा हो तो उसके कान में जप आदि न करके बिना मन्त्र पाठ किए मौन होकर बालिका के सिर का स्पर्श करें।[१३]

निश्चय ही यह भेदभाव परक दृष्टिकोण है। मध्यकाल में स्त्री का स्थान पुरुषों की अपेक्षा हीन होने के कारण स्त्री के संस्कारों में मन्त्र पाठ का निषेध मिलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती मध्यकालीन आचार्यों के इस भेदभाव-परक दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उन्होंने **निष्क्रमण संस्कार** के इस स्थल पर अत्यन्त ही बुद्धिमानी का परिचय देकर क्रान्तिकारी धार्मिक संशोधन का कार्य किया। उनके अनुसार बालक और बालिका दोनों का संस्कार समान रूप से मन्त्र पाठ करते हुए प्रत्येक विधि को सम्पन्न करना है। स्वामीजी बालक के समान ही बालिका के भी दक्षिण और वाम कर्ण में मन्त्र जप का विधान मानते हैं। उन्होंने कान में जप के अनन्तर मौन होकर बालक/बालिका के पिता द्वारा अपनी स्त्री (पत्नी) के सिर-स्पर्श का विधान किया है।[१४] इस प्रकार कर्मकाण्डों में समुचित संशोधन करने का मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया।

अन्नप्राशन में मांस-भक्षण का अनौचित्य

प्राचीन गृह्यसूत्रों में अन्नप्राशन संस्कार में अन्न के पर्याय के रूप में पक्षियों के मांस तथा मछलियों के खाने का उल्लेख मिलता है, किन्तु ऋषि दयानन्द के अनुसार ऐसे स्थल प्रक्षिप्त हैं तथा कथमपि माननीय नहीं हैं।

ऋषि दयानन्द ने 'संस्कारविधिः' के प्रथम संस्करण में 'अन्नप्राशन संस्कार' में आश्वलायन गृह्यसूत्र के मांस विधायक सूत्रों को उद्धृत करते हुए उसका निम्न प्रकार से अर्थ दिया है—

आजमन्नाद्यकामः ॥ १ ॥

तैत्तिरं ब्रह्मवर्चस्कामः ॥ २ ॥

घृतौदनं तेजस्कामः ॥ ३ ॥

दधिमधुघृतमिश्रमन्नं प्राशयेत् अन्नपतेऽन्नस्य.....इति ॥ ४ ॥

अर्थ—१. अजा के मांस का भोजन अन्नादि की इच्छा करने वाला।

२. विद्या कामना के लिए तित्तिर का मांस भोजन करावे। यह बात मांसाहारी तथा एकदेशीय लोगों के लिए है।

३. घृत के साथ ओदन का (अन्न) भोजन करावे, जिसको तेजस्वी होने की कमना होवे।

४. दही, मधु और घृत इनसे युक्त अन्न का प्राशन बालक को (अन्नपते...) इस मन्त्र से कराना यह सर्वदेशी मत है।[१५]

यहाँ ऋषि दयानन्द ने गृह्यसूत्रों का मत दिखाने के लिए उक्त वचन लिखा है, यह उनका स्वमत नहीं था इसलिए उन्होंने लिखा है—

"यह बात मांसाहारी तथा एकदेशीय लोगों के लिए है।" संस्कारविधिः के प्रथम संस्करण में गर्भाधान संस्कार के प्रसंग में भी उन्होंने लिखा है— "यह बात एकदेशी है, सर्वदेशी नहीं, क्योंकि मांस से पौष्टिक गुणवाला द्रव्य दुग्ध और औषधादिकों में अधिक ही है।"[१६]

इस तथ्य का स्पष्टीकरण करने के लिए उन्होंने अपने एक विज्ञापन में स्पष्ट लिखा—"मेरे.......संस्कारविधिः........में गृह्यसूत्र......के वचन बहुत से लिखे हैं, वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिए लिखे उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ।"[१७]

आगे चलकर ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के द्वितीय संस्करण में गृह्यसूत्रों के मांस विधायक सूत्रों और उनके अर्थों को बिल्कुल हटा दिया, जिससे मांस भक्षण की चर्चा भी न रहे।

याज्ञिक पद्धति यह है कि जो यज्ञ में आहुत होता है, वही ऋत्विज् तथा यजमान खाते हैं। अन्नप्राशन संस्कार में स्थालीपाक खीर की आहुति दी जाती है। अतः अन्नप्राशन में बालक को वही खिलाना चाहिए। यह बालक का अन्नप्राशन संस्कार है, मांसप्राशन नहीं। अतः बालक को चरु ही खिलाना चाहिए मांस नहीं। यदि कोई यह कहे कि 'अद्यते यत् तदन्नम्' जो खाया जाय वही अन्न है, तो उसका भी उत्तर यही है कि श्रुति जिसका विधान करे वही भक्ष्य शास्त्रोक्त माना जाता है। वेदों में स्पष्टतः अन्न, दूध तथा फलों का रस ही भक्ष्य बताया गया है।[१८] कात्यायन गृह्यसूत्र में लिखा है—

चातुष्प्राश्यपचनवत् सर्वम्॥[१९]

अर्थात् सब कर्म चार ऋत्विजों के लिए खाने योग्य भोजन विधि के समान सम्पन्न करें। क्योंकि यज्ञ में भी उसकी आहुति दी जाती है तथा ऋत्विज् आदि भी उसे ही खाते हैं। यहाँ भी यज्ञ में घी, भात, खीर आदि की आहुति दी है। अतः वही बालक को खिलाना उचित है।[२०]

चूडाकर्म के कर्मकाण्ड को नई दृष्टि

इस संस्कार में केशों को काटने से पहले श्वेत स्याही (शल्यक) के तीन काँटों से केशों को तीन जगह पृथक्-पृथक् करके तीन-तीन नये कुशों को केशों के मध्य में रखा जाता है।[२१] स्वामी दयानन्द ने यहाँ पर श्वेत स्याही के (साही Porequpine) तीन काँटों के बदले युगानुरूप कंघा से केशों को सुधारने का विधान किया है।[२२] निश्चय ही पारस्कर गृह्यसूत्रादिकों के समय में कंघा नहीं था और उसका कार्य स्याही के काँटों से लिया जाता था।

इसी प्रकार मुण्डन से पूर्व चारों ओर के सिर के बालों को दर्भ (कुश) सहित छुरे से काटा जाता था।[२३] स्वामीजी ने युगानुरूप छुरे के साथ-साथ विकल्प के रूप में कैंची से भी केश काटने का विधान किया है।[२४] इस प्रकार स्वामीजी ने अद्यतन प्रचलित कैंची से बाल काटने की रीति को मान्यता प्रदान की है। निश्चय ही गृह्यसूत्रों के रचनाकाल में कैंची और कंघे की उपलब्धता नहीं थी।

चूड़ाकर्म संस्कार के अन्त में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य के सम्बन्ध में प्राचीन शास्त्रकारों की मान्यता थी कि मुण्डित केश को गोबर के पिण्ड में ढककर गोशाला या तलैया (क्षुद्र जलाशय) अथवा जल के समीप रख दे।[२५] वर्तमान में अधिकांश हिन्दू गंगा आदि नदियों के तीर्थ पर बने हुए मन्दिरों में केशों का मुण्डन कराते हैं और उस मुण्डित केशों (बालों) को नदी में प्रवाहित करते हैं, किन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती मुण्डन के केशों को गोशाला, पोखरा या नदी-जल के समीप यूँ ही बिखेरने या बहाने को अनुचित समझते हैं। उन्होंने 'संस्कारविधिः' में पर्यावरण-सुरक्षा की दृष्टि से इन केशों को जंगल में गड्ढा खोदकर उसमें डालकर ऊपर से मिट्टी से दबा देने का निर्देश किया है। आचार्यों के मतानुसार वैकल्पिक व्यवस्था में भी गोशाला, नदी या तालाब के किनारे भी इन केशादि को पूर्ववत् गाड़ने का ही विधान किया है। स्वामी दयानन्द के शब्द इस प्रकार हैं—''केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर को जंगल में ले जा गड्ढा खोद के उसमें सब डालकर ऊपर से मिट्टी से दबा देवे। अथवा गोशाला, नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवें।''[२६]

कर्णवेध संस्कार

पारस्कर (कात्यायन) गृह्यसूत्र को छोड़कर अन्य गृह्यसूत्रों में कर्णवेध संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु कात्यायन गृह्यसूत्र के अतिरिक्त सुश्रुत[२७] नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि—''रोग से रक्षा के लिए और आभूषण पहनने के लिए भी बालक-बालिका के दोनों कान बींधने चाहिए।'' सुश्रुत के दूसरे स्थल[२८] में भी कर्णवेध का

औचित्य सिद्ध किया गया है। रोग से निवृत्ति का तात्पर्य यह है कि अण्डकोषवृद्धि के निवारण के लिए कर्णवेध करना चाहिए[२९]। वेद[३०] और मनुस्मृति[३१] में कानों में सोने का कुण्डल धारण करने का उल्लेख मिलता है। दोनों कानों में केवल एक-एक छेद ही करना चाहिए। जो स्त्रियाँ अनेक छिद्र कराती है। वह निरर्थक और हानिकारक है।

नासिका-छेदन का अनौचित्य

'संस्कारविधिः' के दूसरे संस्करण में कर्ण (कान) और नासिका (नाक) दोनों के वेधन का विवरण है। संस्कारविधिः के टीकाकारों का यह मत है कि नासिका का उल्लेख 'संस्कारविधिः' के सम्पादकों से भूलवश हो गया है।[३२] यह उचित भी जान पड़ता है। क्योंकि 'संस्कारविधिः' के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन स्वामीजी के निधन के बाद हुआ। सम्पादकों में पं० भीमसेन शर्मा तथा पं० ज्वालादत्त शर्मा का नाम 'संस्कार-विधिः' के दूसरे संस्करण के मुख्य पृष्ठ पर छपा भी है।[३३] नासिका छेदन इसलिए भी अनुचित है—

१. संस्कारविधिः के प्रथम संस्करण में नासिका छेदन का बिल्कुल ही उल्लेख नहीं है।

२. इस संस्कार का नाम 'कर्णवेध संस्कार' है नासिका का नाम नहीं है।

३. कोई विधि या मन्त्र स्वामीजी ने नासिका वेध में बोलने को नहीं लिखा।

४. पारस्कर (कात्यायन) तथा सुश्रुत (जिसके आधार पर स्वामीजी ने कर्णवेध-संस्कार को माना है) में कर्णवेध का वर्णन है, नासिका वेध का नहीं।

वानप्रस्थ आश्रम की नैतिक अवधारणा

तप-स्वाध्यायमय आध्यात्मिक जीवन—वैदिक संस्कृति में जीवन विषयक दो दृष्टियों—भोग तथा त्याग का समन्वय है। वैदिक जीवन दर्शन में न तो भोगवाद की प्रधानता है और न त्यागवाद की ही, अपितु भोग और त्याग का मणिकाञ्चन संयोग पाया जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ पुरुषार्थ चार हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ और काम में भोग की प्रधानता है तो धर्म और मोक्ष, में त्याग की। अर्थात् आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों जीवन-दृष्टियों का यहाँ अद्भुत समन्वय पाया जाता है। हमें इसी दृष्टि से वैदिक संस्कारों (१६ सोलह संस्कार) तथा आश्रमों (चार आश्रमों) को देखना चाहिए। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में अध्यात्मवाद, त्याग और वैराग्य की प्रधानता है। गृहस्थाश्रम में भोगवाद अवश्य है किन्तु वह भी धर्म से नियन्त्रित। वानप्रस्थ आश्रम में विशुद्ध

रूप से तप, त्याग तथा स्वाध्यायमय आध्यात्मिक जीवन प्रधान है।

वानप्रस्थ आश्रम तथा आर्थिक समस्या—आज की अर्थप्रधान उपभोक्तावादी जीवनपद्धति में सभी लोग अर्थोपार्जन में ही लगे हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तो धन कमा ही रहे हैं। विद्यार्थी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और संन्यासी भी धन कमाने में ही लगे हैं। धन कमाने के लिए मचे हुए संग्राम का परिणाम यह है कुछ लोगों को जरूरत से ज्यादा मिल जाता है, कुछ लोग भूखों मरते हैं। वृद्धावस्था या मृत्युपर्यन्त डॉक्टर, वकील, व्यवसायी आदि भिन्न-भिन्न पेशे करने वाले लोग अर्थोपार्जन करना नहीं छोड़ रहे हैं। इस कारण भी बेकारी की भयंकर समस्या सुरसा के समान मुँह बाये खड़ी है। प्राचीन काल में वानप्रस्थ आश्रम के कारण यह अव्यवस्था नहीं थी। बड़े-बड़े वैद्य, व्यवसायी, शिल्पी, अध्यापक, संसद्-सदस्य, विधिवेत्ता और दुकानदार ५० पचास साल की आयु के बाद अपने आप सब कुछ छोड़ देते थे। नये-नये युवक उनकी जगह ले लेते थे। ये नये लोग पुरानों के साथ सम्पर्क बनाये रखते थे। यथा किसी नवयुवक वैद्य को कोई बात समझ नहीं पड़ती थी तो वह किसी पुराने धुरन्धर वैद्य की सेवा में वानप्रस्थ-आश्रम में जाकर उपस्थित होता था, उसके परामर्श से पूरा लाभ उठाता था। इस प्रकार पुरानों के आशीर्वाद से नये लोग तैयार होते थे और समाज दिनों-दिन उन्नति करता था[३४] इस प्रकार वानप्रस्थी हर प्रकार के युवकों की यथासम्भव सहायता किया करते थे। वानप्रस्थी की आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं, उसका जीवन तप त्यागमय था। वह स्वाध्याय और साधना में अपना समय व्यतीत करता था। इस प्रकार वानप्रस्थ-जीवन की बहुलता से आज का समाज भी सहज ही आर्थिक समस्याओं से छुटकारा पा सकता है।

वानप्रस्थ आश्रम तथा अनिवार्य शिक्षा—भोगवाद तथा बेकारी के प्रश्न को हल करने के साथ-साथ वानप्रस्थ आश्रम एक और समस्या को हल करता था। वह समस्या थी अनिवार्य शिक्षा की। वानप्रस्थियों के आश्रम को गुरुकुल कहा जाता था। इन आश्रमों में पढ़ाने वालों को कोई वेतन नहीं मिलता था। फिर भी बिना वेतन लिए, बिना पढ़ाने की फीस लिए, बिना बालकों से खाने-पीने का खर्च लिए, बिना राज्य से किसी प्रकार की सहायता लिए बालकों की शिक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था अपने देश में चल रही थी।

इस व्यवस्था का आधार वानप्रस्थ-आश्रम था। आजकल की अवस्था में निःशुल्क तथा अनिवार्य-शिक्षा के इस कार्य को पूरा करने के लिए लाखों नहीं, करोड़ों रुपये की जरूरत है। वैदिक संस्कृति ने इस समस्या को वानप्रस्थाश्रम द्वारा हल किया था।

आज भी हमारा विकासशील देश भारत सबको शिक्षा देने के लक्ष्य

को वैदिक संस्कृति पर आधारित वानप्रस्थ आश्रम की जीवन पद्धति को अपनाकर बिना लाखों-करोड़ों खर्च किए पूरा कर सकता है।

संन्यास आश्रम का महत्त्व

संन्यासी का मुख्य कर्त्तव्य सत्योपदेश तथा परोपकार करना है। अत: बिना पूर्ण विद्या के, धर्म और ईश्वर की निष्ठा से रहित तथा वैराग्य से हीन व्यक्ति यदि संन्यास ग्रहण करता है तो वह संसार का उपकार नहीं कर सकता। शरीर में सिर की आवश्यकता के समान आश्रमों में संन्यास आश्रम की आवश्यकता है। क्योंकि इसके बिना धर्म और विद्या की वृद्धि नहीं हो सकती। ब्रह्मचारी विद्या ग्रहण करते हैं, गृहस्थ गृहकृत्यों में तत्पर रहता है, वानप्रस्थ का सम्बन्ध विशेषतया तपश्चर्या से होता है। अत: धर्म और विद्या की वृद्धि के लिए संन्यासी से इतर व्यक्तियों को अवकाश कम मिलता है।

सर्वथा पक्षपात रहित होकर व्यवहार करना अन्य आश्रमियों के लिए दुष्कर भी है। संन्यासी जैसा सर्वतोमुक्त होकर संसार का उपकार करने वाला अन्य नहीं हो सकता। संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति के लिए सबसे अधिक अवकाश[३५] मिलता है।

संन्यासी जगत् के सम्मान से विष के तुल्य डरता रहे, और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे। क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है, वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है। इसलिए चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर बाँधे, चाहे अन्न-वस्त्र उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत-उष्ण कितना ही क्यों न हो, इत्यादि सबका सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे। इससे परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने। परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे। न वेद विरुद्ध कुछ माने। परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को न माने। सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और स्वयं को परमात्मा का सेवक माने। वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे। जिस-जिस कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो, वा माता, पिता, पुत्र, स्त्री, पति, बन्धु, बहिन, मित्र, पड़ोसी नौकर, बड़े और छोटों में द्वेष छूट कर प्रेम बढ़े, उस-उसका उपदेश करे।[३६]

अन्त्येष्टि संस्कार

अर्थ—अन्त्येष्टि संस्कार वह कर्म है जो शरीर के अन्त में होता है। जिसके आगे शरीर के लिए कोई भी अन्य संस्कार नहीं है। इसी को नरमेध, पुरुषमेध, नरयाग, पुरुषयाग भी कहते हैं।[३७]

'आश्वलायन गृह्यसूत्र' को छोड़कर उपलब्ध किसी गृह्यसूत्र में अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन नहीं है। 'कौशिक सूत्र' में 'पितृमेध' नाम से अन्त्येष्टि का उल्लेख मिलता है। स्वामीजी ने अपनी 'संस्कारविधिः' में अत्येष्टि को संस्कार मानते हुए दो प्रबल प्रमाण उद्धृत किये हैं—एक यजुर्वेद[३८] का और दूसरा मनुस्मृति[३९] का।

अत्येष्टि के बाद पौराणिक कर्म का खण्डन

स्वामीजी अन्त्येष्टि (मृतक संस्कार) के बाद दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डी कर्म, मासिक, वार्षिक, गया श्राद्ध आदि क्रियाओं को वेद-विरुद्ध अकरणीय मानते हैं, क्योंकि मृत्यु के बाद जीव जिस यमालय में जाता है उस यमालय का अर्थ वाय्वालय अर्थात् 'अन्तरिक्ष जो ऊपर पोला-सा दिखता है' वह है। इस सन्दर्भ में स्वामीजी ने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के छह मन्त्र उद्धृत किये हैं जिसमें 'यम' शब्द का उल्लेख है। इन ६ छहों स्थानों पर यम के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं।

१. ऋतु[४०] २. परमेश्वर[४१] ३. अग्नि[४२] ४. वायु, विद्युत् और सूर्य[४३] ५. वेग वाला होने से वायु[४४] ६. पुनः परमेश्वर[४५]।

हिन्दू-समाज में गरुड़पुराणोक्त यमलोक तथा मृतकश्राद्ध में गहरी आस्था का कारण भी स्वामीजी बतलाते हैं—१. वेदों का ज्ञान न होना, २. सत्योपदेश का न होना।[४६]

विधि—किसी पुरुष के मरने पर पुरुष और स्त्री के मरने पर स्त्री स्नान करावे। चन्दनादि सुगन्ध लेपन और नवीन वस्त्र धारण करावे। शरीर के भार के तुल्य घृत लेकर चन्दन, कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, चन्दन का चूरा, कपूर, पलाश आदि के काष्ठ लेकर कुल दूनी सामग्री लेकर श्मशान जाये।

प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे। मृतक का पग दक्षिण तथा शिर उत्तर रहे। वेदी में थोड़ा-थोड़ा जल छिटकावे। गोमय उपस्थित हो तो लेपन भी करे। वेदी में लकड़ियों का विधिवत् चयन करे। बीच-बीच में कपूर भी रखे। पृथक् अग्नि जलाकर घी तपाकर छानकर उसमें कस्तूरी आदि पदार्थ मिला ले। लम्बी-लम्बी लकड़ियों में ४ चार चमसों को बाँधे। पश्चात् घृत का दीपक जला कपूर में लगाकर शिर से प्रारम्भ कर पाद पर्यन्त मध्य-मध्य में अग्नि प्रवेश करावे।[४७]

अन्त्येष्टि की आहुतियों के लिए स्वामीजी ने प्रारम्भ में चार मन्त्र आश्वलायन गृह्यसूत्र से लिये हैं, पश्चात् ऋग्वेद के १७ सत्रह मन्त्र, तदनन्तर यजुर्वेद के ६३ तिरसठ मन्त्र, अथर्ववेद के १० दस मन्त्र और अन्त में तैत्तिरीय आरण्यक के २६ छब्बीस मन्त्रों से कुल १२१ एक सौ इक्कीस आहुतियों का विधान किया है। 'संस्कार चन्द्रिका' के लेखक डॉ०

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार का मत है कि 'अन्त्येष्टि संस्कार' में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें बार-बार इस बात को दोहराया गया है कि जीव शरीर को छोड़कर अपने कर्मानुसार जन्म को धारण करता है। ऋषि दयानन्द ने इन मन्त्रों का चुनाव बड़ी योग्यता से किया है।[४८]

इन मन्त्रों से चार जन आहुति दें तो ४८४ चार सौ चौरासी आहुतियाँ हो जाती हैं। आगे स्वामीजी लिखते हैं—"यदि घृत विशेष हो तो पुनः इन्हीं १२१ एक सौ इक्कीस मन्त्रों से आहुति देते जाये यावत् शरीर भस्म न हो जाय तावत् देवें।"[४९]

अन्त्येष्टि के पश्चात् का कार्य

शरीर भस्म होने के बाद सब उपस्थितजन वस्त्र-प्रक्षालन स्नानादि करके, जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उसके घर का मार्जन, लेपन प्रक्षालन आदि से शुद्धि करके ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ और पुनः स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण मन्त्रों से आहुति दें। सुगन्धि आदि मिश्रित घृत की आहुति से मृतक के गृह की अशुद्ध वायु निकल जाती है और शुद्धवायु गृह में प्रवेश करता है। जिससे सबका चित्त प्रसन्न भी हो जाता है।

अन्त्येष्टि के तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर चिता से अस्थि उठाके उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक् रख दे। इस प्रकार मृतक के दाहकर्म और बाद में 'अस्थि संचयन' के बाद दूसरा कोई भी क्रिया कर्म नहीं करना चाहिए। स्वामीजी ने अन्त्येष्टि कर्म की समाप्ति में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात यह लिखी है—

"**हाँ, यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते जी, वा मरे पीछे उसके सम्बन्धी वेदविद्या, वेदोक्तधर्मप्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करे, बहुत अच्छी बात है।**"[५०]

मृतक के शरीर के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचार

ईजिप्ट में मुर्दे को ममियों की तरह सुरक्षित रखा जाता है। ईसाइयत में मुर्दे को गाड़ दिया जाता है। इस्लाम में भी मुर्दे को कब्र में दफन किया जाता है। पारसी धर्म में मुर्दे को हवा में खुला छोड़ दिया जाता है। हिन्दुओं में मुर्दे को जला दिया जाता है। कहीं-कहीं कुछ लोगों को जमीन में गाड़ भी दिया जाता है जो मेरी समझ से यह ईसाईयत और इस्लाम का प्रभाव है। हिन्दू संन्यासी अग्निदाह न करके मृतक संन्यासी को जल में प्रवाहित कर देते हैं। कुछ अन्य हिन्दू लोग भी शव को जल में प्रवाहित कर देते हैं। स्वामीजी शव को जमीन में गाड़ना तथा जल में प्रवाहित करना दोनों को बहुत ही अनुचित समझते हैं। आधुनिक विज्ञान एवं पर्यावरण की शुद्धि

की दृष्टि से भी मृतक को भस्म करना ही उत्तम है। इसलिए यूरोप, अमेरिका आदि पश्चिम देशों में विद्युत् शवदाहगृह बनाये गये हैं यद्यपि वे ईसाइयत के अनुयायी हैं।

हिन्दू संन्यासियों में अग्नि दाह की प्रथा समाप्त होने का कारण मनुस्मृति के निम्न श्लोक का गलत अर्थ लेना है—

अनग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भावसमाहितः॥

—मनुस्मृति ६।२३

इस श्लोक में संन्यासी को 'अनग्नि' कहा गया है। जिसका तात्पर्य आहवनीयादि अग्नियों से रहित होना है न कि अन्त्येष्टि के दाहकर्म से विलग होना।

स्वामीजी ने इस श्लोक को संस्कारविधिः में उद्धृत करते हुए टिप्पणी में यह लिखा है—''इसी पद से भ्रान्ति में पड़कर संन्यासियों का दाह नहीं करते और संन्यासी लोग अग्नि नहीं छूते, यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया। वहाँ आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है, स्पर्श या दाहकर्म छोड़ना नहीं है। द.स.[५१]''

मुर्दे को गाड़ने तथा जलाने की तुलना

१. मृत शरीर को जलाने से भूमि बहुत कम खर्च होती है। कब्रों से स्थान-स्थान पर बहुत-सी भूमि घिर जाती है।

२. कब्रिस्तान के कारण बहुत-से रोग वायु मण्डल को दूषित कर देते हैं, वायु के दूषित होने से वे फैलकर समाज में रोग फैलाने के कारण बनते हैं। मुर्दों के जला देने से यह नहीं होता।

३. जो जल कब्रिस्तान के पास होकर जाता है वह रोग का कारण बन जाता है, जलाने से ऐसा नहीं होता।

४. कुछ पशु मृत शरीर को उखाड़कर खा जाते हैं रोगी शरीर को खाने से वे रोगी बनकर मनुष्यों में भी रोग फैलाते हैं। जलाने से यह बुराई नहीं होती।

५. कुछ कफन-चोर कब्र खोदकर शरीर का कफन उतार लेते हैं। इस प्रकार मृतक के सम्बन्धियों के मनोभावों को ठेस पहुँचती है। मृतक को जला देने से ऐसा नहीं हो सकता है।

६. लाखों बीघा जमीन संसार में कब्रिस्तानों के कारण रुकी पड़ी है। जलाना शुरु करने से यह खेती तथा मकान बनाने के काम आयेगी। जिन्दों के लिए ही जमीन थोड़ी पड़ रही है उसे मुर्दों ने घेर रखा है।

७. दरगाहों की समाधि-पूजा, कब्रों की पूजा, पीरों की पूजा, मुर्दों की पूजा—अनेक प्रकार के पाखण्ड मुर्दों के जला देने से खत्म हो जायेंगे।

८. बहुत से पुजारी (जिनका पेशा यही है कि कब्रों, दरगाहों का चढ़ावा खायें) मुर्दों के जला देने से वे लाभदायक काम पर लगकर समाज के लिए उपयोगी व्यक्ति बनेंगे।

९. इन मजारों की पूजा करने, चढ़ावा चढ़ाने और आने-जाने में जो करोड़ों रुपया व्यर्थ का व्यय होता है, बच जायेगा।

१०. सैकड़ों दरगाहें और मकबरे ऐसे हैं जो हजारों नहीं लाखों रुपये की लागत से बने हैं। इस प्रकार जो करोड़ों रुपया अनावश्यक खर्च होता है, वह बचकर शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि उपयोगी कार्यों पर व्यय हो सकेगा।

११. अनेक पतित लोग मुर्दों को उखाड़कर उनके साथ अनेकविध दुष्प्रयोग (तान्त्रिक अभिचार तथा कुकर्म) करते पकड़े गये हैं। जलाने से इन मुर्दों की ऐसी दुर्गति नहीं होगी। कुछ तकियों और हिन्दू-समाधियों पर चरस, गांजा, अफीम और शराब पी जाती है। जलाने से ये दुराचार तथा भ्रष्टाचार भी नहीं होगें।[५२]

ऋषि दयानन्द ने अन्त्येष्टि की प्रचलित सभी रीतियों पर विचार करते हुए थोड़े से गिने-चुने शब्दों में जो लिखा है, वह अत्यन्त ही उपादेय है—

प्रश्न—जलाना, गाड़ना, जल-प्रवाह करना और जंगल में फेंक देना—इन चारों में से कौन-सी बात अच्छी है?

उत्तर—सबसे बुरा गाड़ना है। उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है। क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर-फाड़कर खा जाते हैं, परन्तु जो कुछ हाड़ या मल जल में रहेगा, वह सड़कर जगत् को दुःखदायक होगा। उससे कुछ-एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है, क्योंकि यद्यपि उसको मांसाहारी पशु-पक्षी नोंच खायेंगे तथापि जो उसके हाड़ की मज्जा और मल सड़कर दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।[५३]

पादटिप्पणियाँ

१. वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्। आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥ ३ ॥
संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते। असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥
अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः। शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥
(संस्कारविधिः के प्रारम्भिक श्लोक ३-५)

२. निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। (मनुस्मृति २।१६)

३. गर्भाद्या मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि। वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परमेश्वरम् ॥ २ ॥
(संस्कारविधिः के प्रारम्भिक श्लोक २)

४. संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च [illegible]ान्ते द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥
(कात्यायन गृह्यसूत्र २।१।२४)

Scanned by CamScanner

५. कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः। वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥ ६ ॥
प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः। जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥ ७ ॥
बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ्मानवप्रियकारकैः। प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ॥ ८ ॥
(संस्कारविधिः के प्रारम्भिक श्लोक ६-८)

६. (क) वैद्य श्री पं० रामगोपाल शास्त्री, संस्कारविधि-मण्डनम् (भूमिका), पृ० १९।
(ख) आचार्य विश्वश्रवाः जी के अनुसार स्वामीजी का संकेत तत्कालीन ग्रन्थ 'वेदोक्त संस्कार प्रकाश' (लेखक-बालाजी विट्ठल गांवस्कर) की ओर है।

७. ''जिस-जिस संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण-वचन और प्रयोजन है, वह-वह संस्कार के पूर्व लिखा जायेगा। तत्पश्चात् जो-जो संस्कार में कर्त्तव्य विधि है, उस-उसको क्रम से लिखकर पुनः उस संस्कार का शेष विषय, जो कि दूसरे संस्कार तक करना चाहिए, वह लिखा है।'' (भूमिका, संस्कारविधिः)

८. पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनमीरितम्।
(वीरमित्रोदय, संस्कार-प्रकाश, भाग-१, पृ० १६६ पर उद्धृत)

९. स्वामीजी के शब्द इस प्रकार हैं—''जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे। यावत् बालक के जन्म हुये पश्चात् दो महीने न बीत जावें, तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन-छादन, शयन, जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करें, जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरी सन्तान भी उत्तम होवे।''
(संस्कारविधिः, पृ० ६४)

१०. संस्कारविधिः, पृ० ६५।

११. सुश्रुत शरीर स्थान, अध्याय ३।५१।

१२. मनुस्मृति ९।९।

१३. पारस्कर गृह्यसूत्र १।१८।६।

१४. (क) ......सुदिनत्वमह्नामिति सव्ये स्त्रियै तु मूर्धानमेवावजिघ्रति तूष्णीम् (पारस्कर गृह्यसूत्र २३) स्त्रियास्तूष्णीं मूर्धन्यभिजिघ्रणं मूर्धन्यभिजिघ्रणम् (गोभिल गृह्यसूत्र २५) और दक्षिण (सव्य) कान में 'अस्मे प्रयन्धि' इत्यादि यथालिखित मन्त्रों को पढ़ें तथा वामपार्श्व में (वाम भाग) स्थित जो स्वस्त्री उसके भी मस्तक का स्पर्श करें—संस्कारविधिः (प्रथम संस्करण), पृ० ४०-४१
(ख) ...'और मौन करके स्त्री के शिर का स्पर्श करें' संस्कारविधिः (द्वितीय संस्करण), पृ० ९२।

१५. संस्कारविधिः (प्रथम संस्करण), पृ० ४२।

१६. संस्कारविधि (प्रथम संस्करण), पृ० ११।

१७. ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृ० १५४।

१८. अथर्ववेद २।२६।४, ६।१४०।२, १९।३१।५।

१९. कात्यायन गृह्यसूत्र १।२।४।

२०. डॉ० सत्यव्रत राजेश, पारस्कर गृह्यसूत्र (प्रथम काण्डम्), कष्णाव्याख्योपेतम्, पृ० ९।

२१. त्र्येण्या शलल्या विनीय त्रीणि कुशतरुणान्यन्तर्दधाति 'ओषध' इति।
(पारस्कर गृह्यसूत्र, २।१।१०)

२२. ''तत्पश्चात् कङ्घा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे।'' (संस्कारविधि, पृ० १००)

२३. मन्त्र ब्राह्मण १।६।५, आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१७।१२ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र भी।

संस्कृत : एक जीवित भाषा

—पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा

*[भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के क्रान्तिकारियों के जन्मदाता तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के साक्षात् शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा पञ्चम अन्तरराष्ट्रीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के बर्लिन-अधिवेशन में पठित निबन्ध का सारांश। पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा का अति संक्षिप्त परिचय इसी अंक के पृष्ठ ३३-३४ में दिया गया है—**सम्पादक**]*

प्राय: यह समझा जाता है कि संस्कृत एक मृत भाषा है। यूरोप तथा अन्य अनेक देशों के प्राच्यविद्याविद् संस्कृत को मृत ही मानते हैं। यहाँ तक ही नहीं, कुछ लोग तो इससे भी आगे जाकर यह भी कह देते हैं कि यह भाषा सामान्यतया आम आदमी द्वारा कभी प्रयोग में नहीं लायी गयी। यहाँ मैं प्रारम्भ में ही यह कह दूँ कि एक भारतवासी के लिए ऐसा कथन अत्यन्त आश्चर्योत्पादक तथा खेदजनक ही होगा जिसमें यह कहा जाय कि उसकी पवित्र भाषा कभी एक जीवित-जागृत भाषा नहीं थी; आज तो यह जीवित नहीं ही है, किन्तु विगत में भी कभी नहीं रही।

मैं इस निबन्ध में यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगा कि वह संस्कृत भाषा, जिसे महर्षि पाणिनि ने अपने 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ में सुनिश्चित रूप प्रदान किया है, उनके युग में भी प्रयोग में आनेवाली भाषा थी। द्वितीयत:, मैं यह भी बताऊँगा कि भारत के सभी भागों में, काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, विद्वान् पारस्परिक वार्तालाप तथा पत्र-व्यवहार में आज भी इस भाषा का बहुतायत से प्रयोग करते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृत कभी बोली जानेवाली भाषा नहीं रही, उन्हें यह बताना पड़ेगा कि जिस भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य है, उस संस्कृत को भी संसार की उन प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं के उस वर्ग में क्यों न रक्खा जाय जो कि भिन्न-भिन्न युगों में बोली जाती रही हैं! जब तक उपर्युक्त कथन के विपरीत कोई प्रमाण नहीं मिलता, हमें संस्कृत को भी अन्य प्रायोगिक भाषाओं में ही स्थान देना होगा। लैटिन तथा ग्रीक आज मृत भाषाएँ हैं, किन्तु कोई भी व्यक्ति इस बात में शंका नहीं करता कि वे किसी समय बोली जानेवाली भाषाएँ थीं। इसी तर्क का अनुसरण करते हुए यह समझना कठिन हो जाता है कि संस्कृत को ही सन्देह का लाभ क्यों नहीं दिया जाता और उसे किसी समय सर्वसाधारण के प्रयोग में आनेवाली भाषा क्यों नहीं माना जाता?

कुछ लोग कहेंगे कि भारत की पुरानी प्राकृत भाषाओं का परिष्कृत रूप ही संस्कृत है, परन्तु अनेक विद्वानों की धारणा है कि संस्कृत तथा प्राकृत समकालीन हैं तथा उनका परस्पर भगिनीवत् सम्बन्ध है। जैसाकि हम जानते हैं, प्राचीन नाटकों में नायक संस्कृत बोलते हैं, जबकि निम्न श्रेणी के लोग किसी प्रकार की प्राकृत का प्रयोग करते हैं। कुछ लोगों की यह धारणा है कि संस्कृत का आविष्कार ब्राह्मणों ने इसीलिए किया था कि इस भाषा में निहित सारा ज्ञान उन्हीं के पास रहे। वे यह

भी कहते हैं कि भारत का पुरोहितवर्ग सामान्य जनता को प्रवंचित करने के लिए ही संस्कृत का प्रयोग धर्म-कार्यों में करता था। अपने कथन की पुष्टि में वे यह भी कहते हैं कि पुरोहितवर्ग का मुख्य ध्येय तो जनसामान्य को अज्ञान में रखना ही था, और उसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए उन्होंने साधारण जनता को संस्कृत पढ़ने से निरुत्साहित किया। यहाँ तक कि किसी विदेशी भाषा पढ़ने पर तो उन्होंने पूर्ण प्रतिबन्ध ही लगा दिये, जैसा कि संस्कृत के इस प्रसिद्ध श्लोक से ज्ञात होता है—

न वद्येद्यावनीं भाषां प्राणकण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानेऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

अर्थात्—प्राणों पर विपत्ति आने पर भी हमें यावनी भाषा नहीं बोलनी चाहिए तथा हाथी के द्वारा पीड़ित होने पर भी जैन मन्दिर में जाकर आश्रय लेना अनुचित है।

कतिपय अन्य लोगों का कथन है कि संस्कृत में व्याकरण-विषयक जो जटिलताएँ हैं, इसके व्याकरण में जैसे अपवाद आदि हैं, इसमें समास आदि के जैसे जटिल नियम हैं, तथा सन्धि जैसे अत्यन्त व्यवस्थित किन्तु कृत्रिम नियम हैं, जो कि इसकी विकास की गति को अवरुद्ध किये हुए हैं, इन सबको देखते हुए यही जान पड़ता है कि सामान्य लोगों द्वारा शायद ही इसका कभी प्रयोग होता रहा हो।

जो लोग यह मानते हैं कि संस्कृत-भाषा प्राकृतों की एक विकसित अवस्था है तथा प्राकृत एवं संस्कृत एक-दूसरी के निकट होने के कारण भगिनीवत् समकालीन हैं, मेरे विचार से वे गलती पर हैं। ऐसे लोगों ने 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति को ही ठीक प्रकार से नहीं समझा। 'प्राकृतप्रकाश' के लेखक वररुचि तथा प्रसिद्ध वैयाकरण एवं कोशनिर्माता हेमचन्द्र ने बताया है कि 'प्राकृत' शब्द 'प्रकृति' से बना है तथा यह तद्धित है जिसमें अण् प्रत्यय लगा है। अब यह भी जानना चाहिए कि 'प्रकृति' शब्द का अर्थ 'मूल' या 'आदिस्रोत' होता है तथा वररुचि के अनुसार संस्कृत ही वह प्रकृति (मूल) है जिससे अन्य सारी प्राकृत भाषाएँ निकली हैं। उसने अपने ग्रन्थ 'प्राकृतप्रकाश' में पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि प्राकृत भाषाएँ अपनी 'प्रकृति' पर ही निर्भर होती हैं और उनकी यह प्रकृति निश्चय ही संस्कृत है। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि 'अष्टाध्यायी' में एक भी ऐसा सूत्र नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि पाणिनि को अनेक प्राकृतों में से एक का भी परिचय था। परन्तु यह बात पतञ्जलि के बारे में नहीं कही जा सकती जो पाणिनि के कई शताब्दियों बाद हुए। महाभाष्यकार स्वयं ही बतलाते हैं कि संस्कृत-शब्दों के अनेक अपभ्रंश-रूप भी होते हैं। उदाहरण के रूप में वे कहते हैं कि एक 'गौ' शब्द के ही गवि, गोनी, गोता आदि अपभ्रंशरूप चल पड़े हैं। पतञ्जलि अत्यन्त तत्परतापूर्वक संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन करने के लिए कहते हैं। इसी प्रसंग में वे यह भी बतलाते हैं कि व्याकरण का अध्ययन मनुष्य के लिए क्यों आवश्यक माना गया है। उनका कथन है कि हमें व्याकरण पढ़ना चाहिए, अन्यथा हम 'म्लेच्छ' बन जायेंगे क्योंकि

जो व्यक्ति संस्कृत-शब्दों का सही उच्चारण नहीं कर सकता उसी की 'म्लेच्छ'-संज्ञा होती है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में जिन 'अपशब्द' तथा 'अपभ्रंश' आदि शब्दों का प्रयोग किया है, वे 'अष्टाध्यायी' में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। जो लोग यह मानते हैं कि पाणिनि भी संस्कृत का अपनी मातृभाषा के रूप में प्रयोग नहीं करते थे, उनके समक्ष एक अन्य कठिनाई उपस्थित होगी। जैसाकि हम देख चुके हैं, पाणिनि को किसी प्राकृत भाषा की जानकारी नहीं थी (अर्थात् पाणिनि-युग में किसी प्राकृत भाषा के होने का पता नहीं चलता); तब यह प्रश्न होता है कि पाणिनि स्वयं कौन-सी भाषा प्रयुक्त करते थे? इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर मिलता है कि वे संस्कृत बोलते थे। उन्होंने वैदिक तथा लौकिक दोनों संस्कृत भाषाओं के नियम दिये हैं। परन्तु अष्टाध्यायी में अधिकांश में प्रचलित (बोलचाल की संस्कृत) भाषा के नियम दिये गये हैं जिन्हें वे 'भाषा' कहते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि पाणिनि जिस भाषा का व्याकरण लिखा रहे हैं, उसके लिए वे 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं करते। वे इतने विनम्र हैं कि अपनी मातृभाषा के लिए उस संस्कृत शब्द का प्रयोग नहीं करते जिसका अभिप्राय 'पूर्ण' तथा 'परिष्कृत' से लिया जाता है।

'भाषा' शब्द 'भाष' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है 'बोलना'। हमारी चर्चा के प्रसंग में इस शब्द पर विचार करना आवश्यक है। पाणिनि ने 'भाषा' शब्द का प्रयोग (अ० ३, पाद २, सूत्र १०९) 'छन्दस' नाम की उस प्राचीन भाषा के विलोम-अर्थ में किया है जिसका प्रयोग उनके समय में बन्द हो गया था। 'भाषा' शब्द तो प्रयुक्त ही उस भाषा के लिए होता है जो बोली जाती है, प्रयोग में आती है। इसके लिए प्रमाण ढूँढ़ना भी कठिन नहीं है। वर्तमान काल में भारत में जो हिन्दी आदि आधुनिक भाषाएँ प्रचलित हैं, बोली जाती हैं, उन्हें भी 'भाषा' शब्द से ही अभिहित किया जाता है। 'छन्दस' के विपरीत 'भाषा' बोलने के लिए पाणिनि ने जो सामान्य तथा विशेष नियम बनाये हैं, उनका कोई अर्थ नहीं था यदि संस्कृत बोलचाल की भाषा न होती। यही बात उन तद्धित प्रत्ययों के विषय में कही जा सकती है जो उनके ग्रन्थ में बहुतायत से मिलते हैं। किसी कृत्रिम भाषा के व्याकरण में उनके विवेचन का कोई प्रसंग ही नहीं होता।

यह कथन तो सर्वथा प्रमाणरहित ही है कि संस्कृत उन ब्राह्मणों का आविष्कार है जिन्होंने इस भाषा पर अपना एकाधिकार कर रक्खा था। यह आश्चर्य की बात है कि मेरे भी कुछ देशवासी संस्कृत के बारे में ऐसी ही विचित्र धारणा रखते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं भी दृढ़ता से कह सकता हूँ कि ऐसा कहनेवाले अपनी पवित्र भाषा के बारे में कुछ भी नहीं जानते, उनकी शिक्षा पूर्णतया पाश्चात्त्य पद्धति पर हुई है। हमें भारत के वर्तमानकालीन समाज को ध्यान में रखकर उसके अतीत पर विचार नहीं करना चाहिए। आज तो भारतीय समाज में जाति-प्रथा, मूर्तिपूजा, बाल-विवाह आदि जो अन्धविश्वासपूर्ण रीति-रिवाज चल पड़े हैं, वे ही आधुनिक भारतीय समाज की रूपरेखा बनाते हैं। आज के लोगों की आदतों, स्वभाव तथा

चिन्तन में प्राचीन काल की अपेक्षा इतना अधिक अन्तर आ गया है कि वर्तमानकालीन भारत को देखकर अतीतकाल के आर्यावर्त्त के बारे में कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। आज तो बहुत कम ब्राह्मण ऐसे मिलेंगे जो वेद के एक मन्त्र का भी उच्चारण कर सकते हों, अथवा किसी निम्न जाति के व्यक्ति को संस्कृत सिखाते हों, परन्तु मेरा पक्का विश्वास है कि इस प्रकार की कट्टरता हमारे शास्त्रों द्वारा अनुमोदित नहीं है। इसके विपरीत वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों तथा सूत्रों से इस बात के भूरिशः प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीनकाल में जाति अथवा वर्ग का अन्तर किये बिना संस्कृत सभी लोगों की समान सम्पत्ति थी। भारतवासी संस्कृतभाषी आर्यों के धार्मिक तथा सामाजिक विधान उन सभी लोगों के लिए समान रूप से उपलब्ध थे जो ज्ञानोपार्जन करना चाहते थे। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जहाँ निम्न जाति के लोग भी अपने गुणों के बल पर सर्वोच्च पदों पर पहुँचे थे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में हमें यह लिखा मिलता है कि शूद्रा माँ का पुत्र कवष ऐलूष अपनी योग्यता एवं विद्वत्ता के कारण सम्मानित हुआ तथा ऋषियों की कोटि में परिगणित हुआ। उसके जीवन का सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रसंग तो यही है कि शूद्र होने पर भी ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों का वह द्रष्टा बना (ऋग्वेद १०।३०।३१)। 'छान्दोग्योपनिषद्' में यह स्पष्ट लिखा है कि सत्यकाम जाबाल का कोई गोत्र नहीं था। उसके माता-पिता आदि के बारे में हमारी जानकारी इतनी ही है कि वह 'जबाला' नामक स्त्री का पुत्र था तथा वह अपनी माता के नाम पर ही प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार अज्ञात व्यक्तियों की सन्तान होने पर भी जाबाल 'यजुर्वेद' की एक शाखा का प्रवर्त्तक माना गया है। 'आपस्तम्ब सूत्र' (२।५।१०) तथा 'मनुस्मृति' (१०।६५) में तो यहाँ तक लिखा है कि एक शूद्र अपने शुभ कर्मों से ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण अशुभ कर्मों से शूद्र बन जाता है। 'शुक्ल-यजुर्वेद' के २६वें अध्याय में एक प्रसिद्ध मन्त्र है जिसमें यह कहा गया है कि वेद की पवित्र एवं कल्याणी वाणी का प्रचार तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यहाँ तक कि निम्न जातियों में से निम्नतम तक को भी करना चाहिए। हमारे शास्त्रों के इन स्पष्ट प्रमाणों के रहते यह नहीं कहा जा सकता कि मात्र ब्राह्मणों के लिए ही वेद बनाये गये हैं।

पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' (अ० ६, पाद १, सूत्र १३०) में एक प्रसिद्ध वैयाकरण चक्रवर्मन् का उल्लेख किया है। अब यह सिद्ध बात है कि चक्रवर्मन् क्षत्रिय था, क्योंकि उसके नाम के पीछे 'वर्मा' शब्द का प्रयोग मिलता है। उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों का ही संस्कृत पर एकाधिकार था, यह कथन तथ्यपूर्ण नहीं है। समस्त आर्यावर्त्त में सभी वर्गों द्वारा इस भाषा का बिना किसी भेदभाव के, निर्बाध प्रयोग किया जाता था।

प्रायः लोग यह कहते हैं कि संस्कृत का व्याकरण इतना जटिल है कि उसके कभी बोली जानेवाली भाषा होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परन्तु मेरे विचार से ऐसे लोगों का कथन बहुत युक्तिपूर्ण नहीं है। संस्कृत भाषा में जो बहुत-

से अपवाद तथा अनियमित रूप आदि मिलते हैं, वही इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि यह किसी समय आम आदमियों द्वारा बोली जाती थी। प्रायः यह कहा जाता है कि कुछ अंशों में शब्द सिक्कों की तरह होते हैं तथा जो सिक्के हजारों हाथों में से निकलते हैं उनकी आकृति भी विकृत हो जाती है, उसी प्रकार सबसे अधिक प्रयोग में आनेवाले शब्दों का रूप भी विकृत हो जाता है और उनमें अनेक प्रकार की विशिष्टताएँ (विद्रूपताएँ) आ जाती हैं। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि प्रायः सभी प्राचीन तथा अर्वाचीन भाषाओं में अनगढ़ रूपोंवाले शब्द मिलते हैं। ये वही शब्द होते हैं जिनका प्रयोग अधिकाधिक होता है। संस्कृत भी इसी नियम के अन्तर्गत आ जाती है। जहाँ तक सन्धि के नियमों का सम्बन्ध है, अन्य देशवासियों को ये कृत्रिम ही लगते होंगे, किन्तु भारतवासी इन नियमों से इतने अधिक परिचित हैं कि इस तर्क के आधार पर संस्कृत को बोली जानेवाली भाषा के रूप में स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं आती। पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में अनेक वैयाकरणों के नाम दिये हैं, तथा भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित उच्चारणों की विभिन्नता का भी संकेत किया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिस समय 'अष्टाध्यायी' की रचना हुई थी, उस समय संस्कृत सामान्य बोलचाल की भाषा थी।

अब मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूँ कि हम भारतवासी इस समय संस्कृत के बारे में क्या विचार रखते हैं। संस्कृत के व्याकरण में बताई जानेवाली तथाकथित कठिनाइयों के होने पर भी मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि भारत का शिक्षितवर्ग आज भी संस्कृत को परस्पर विचार-विनिमय के साधन के रूप में प्रयोग कर सकता है। साथ ही मैं यह भी कह सकता हूँ कि संस्कृत एक प्रकार से जीवित भाषा है। वस्तुतः संस्कृत भारत के पठित-वर्ग की एक प्रकार से राष्ट्रभाषा ही है। इसमें किसी को कोई सन्देह नहीं है कि यदि संस्कृत का प्रयोग राष्ट्रभाषा के रूप में किया जाता है तो उसमें कोई असुविधा भी नहीं होगी। मेरे इस कथन का समर्थन वे भारतविद्याविद् करेंगे जो वर्षों तक भारत में रहे हैं। मैं जानता हूँ कि जिस समय प्रो० मोनियर विलियम्स भारत में थे तो वे प्रायः प्रतिदिन पण्डितों से भेंट किया करते थे और उनका यह वार्तालाप संस्कृत में ही होता था। डॉ० बूलर जब बम्बई और पुणे में प्रोफैसर के पद पर रहे तो वे अपने कॉलेज के पण्डितों से प्रायः हर रोज संस्कृत में ही बोलते थे। इसी प्रकार डॉ० कीलहॉर्न तथा अन्य प्राच्यविद्याविद् विद्वान् जो आज भारत में हैं, वे पण्डितों से वार्तालाप करते समय संस्कृत का ही प्रयोग करते हैं। प्राच्य और पाश्चात्त्य विद्वानों के पारस्परिक विचार-विनियमय में भी संस्कृत को ही माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। मैं अपने इस कथन के समर्थन में प्रो० मैक्समूलर के कथन को उद्धृत करना चाहता हूँ। उन्होंने अपने हिबर्ट व्याख्यानों में कहा था—"जो ब्राह्मण अपनी पवित्र परम्पराओं के पालन में दृढ़ हैं, वे अंग्रेजी अथवा बंगाली का भी प्रयोग नहीं करते, वे संस्कृत ही बोलते हैं और इसी भाषा में लिखते हैं। मुझे प्रायः उनके पत्र मिलते रहते हैं जो सर्वथा निर्दोष संस्कृत

में होते हैं।''

राजा सौरीन्द्रमोहन ठाकुर तथा रामदास सेन ने इस परिषद् के सम्मुख अपने जो संस्कृत-गीत पठनार्थ भेजे हैं, वे भी मेरे इस कथन की पुष्टि ही करते हैं। बहुत कम यूरोपीय लोगों को इस बात का पता है कि हम भारतवासी किस सीमा तक संस्कृत का प्रयोग करते हैं। भारत के विभिन्न भागों में मेरे अनेक मित्र हैं और वे संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में मुझसे पत्र-व्यवहार नहीं कर सकते। कुछ मास पूर्व ही प्रो० मोनियर विलियम्स ने 'एथेनियम' नामक पत्र में स्वामी दयानन्द द्वारा मुझे भेजे गये एक संस्कृत-पत्र का अनुवाद प्रकाशित किया था। स्वामी जी तो किसी समय बच्चों तक से संस्कृत में वार्तालाप करते थे। यदि भारत के सभी भागों के पण्डित लोग संस्कृत तथा हिन्दी के माध्यम से अपनी बौद्धिक चर्चाओं को सम्पन्न न करें तो उनका पारस्परिक विचार-विनिमय तो असम्भव ही हो जायेगा, क्योंकि इस विशाल देश के विभिन्न प्रान्तों में बोली जानेवाली प्रादेशिक भाषाओं की संख्या बहुत है। मैं यह बात अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। मैंने भारत के पश्चिमी तथा उत्तरी भागों में सामाजिक तथा धार्मिक विषयों पर अनेक व्याख्यान दिये हैं तथा शास्त्रार्थ भी किये हैं, किन्तु संस्कृत में बोलने से मुझे कहीं कोई कठिनाई नहीं हुई और मेरे देशवासियों ने मेरे कथन को भलीभाँति समझा। इस प्रकार मैंने भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि पाणिनि के समय संस्कृत बोलचाल की भाषा थी तथा आज भी यह भारत के शिक्षित नागरिकों द्वारा अधिकांश में बोली तथा लिखी जाती है।

पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा

—डॉ० भवानीलाल भारतीय

संस्कृत के अद्वितीय पण्डित, स्वामी दयानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य, सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म ४ अक्टूबर १८५७ को गुजरात के कच्छ जिले के माण्डवी नामक कस्बे में हुआ था। इनके पिता का नाम करसनजी था जो भणशाली जाति के वैश्य थे। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, तथापि उन्होंने अपने पुत्र श्यामजी को अध्ययन के लिए पहले कच्छ राज्य की राजधानी भुज तथा उसके पश्चात् बम्बई भेजा। बम्बई में उन्होंने विख्यात विल्सन हाई स्कूल तथा एलफिस्टन हाईस्कूल में अध्ययन किया। इन्हीं दिनों उनका परिचय एक धनाढ्य भाटिया सेठ छबीलदास लल्लूभाई से हुआ। कालान्तर में इसी सेठ की पुत्री भानुमती से श्यामजी का विवाह १८७५ ई० में हो गया।

जब स्वामी दयानन्द बम्बई आये तो उनकी भेंट इस होनहार, प्रतिभा-शाली युवक से हुई। श्यामजी ने भी स्वामीजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा विचारों से प्रेरणा ली और उनके दृढ़ अनुयायी बन गये। अब उन्होंने संस्कृत का विशद अध्ययन किया और इस भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया। इसी बीच उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर मोनियर विलियम्स का प्रस्ताव मिला जिसके अनुसार उन्हें ऑक्सफोर्ड में रहकर उनके शोध सहायक के रूप में कार्य करना था। यद्यपि विदेश यात्रा के लिए उनके पास पर्याप्त आर्थिक साधन भी नहीं थे, तथापि स्वामी दयानन्द से उत्साहित होकर तथा इंग्लैण्ड जाने के सम्बन्ध में उनकी पूर्ण सहमति देखकर श्यामजी ने ऑक्सफोर्ड जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इससे पूर्व उन्होंने बम्बई में रहते हुए स्वामी दयानन्द के निर्णयसागर प्रेस मुम्बई से मुद्रित और प्रकाशित होने वाले वेदभाष्य की व्यवस्था को भी भली-भाँति सम्भाला। उनसे पूर्व स्वामीजी के वेद भाष्य के मुद्रण एवं प्रकाशन की व्यवस्था श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि देखा करते थे, किन्तु उनके कार्य को सन्तोषजनक न पाकर ही स्वामी दयानन्द ने श्यामजी के जिम्मे यह काम सौंपा था।

ऑक्सफोर्ड में रहकर श्यामजी ने केवल बेलॉइल कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा ही उत्तीर्ण नहीं की, किन्तु कुछ समय पश्चात् उन्होंने बैरिस्टरी भी पास कर ली। इंग्लैण्ड प्रवास के समय उनका स्वामी दयानन्द से नियमित पत्र-व्यवहार होता रहता था। १३ जुलाई १८८० को संस्कृत में लिखे अपने पत्र में स्वामी दयानन्द ने श्यामजी से इंग्लैण्ड में उनके निवास तथा कार्य के सम्बन्ध में अनेक बातें पूछी थीं। इसमें उन्होंने श्यामजी को बताया कि धन लाभ की अपेक्षा कीर्ति लाभ मनुष्य के लिए अतीव हितकारी होता है। उन्होंने उनसे यह भी जानना चाहा था कि प्रो० मोनियर विलियम्स तथा अध्यापक मैक्समूलर आदि विद्वान् वेदों के बारे में सम्प्रति क्या धारणा

रखते हैं? उन्होंने यह भी जिज्ञासा की थी कि क्या उन्हें महारानी विक्टोरिया का दर्शन लाभ तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है या नहीं? २५ सितम्बर १८८० को लिखा गया स्वामीजी का पत्र तो संस्कृत के २१ पद्यों में निबद्ध है। इसमें उन्होंने मोनियर विलियम्स को उनका नमस्ते निवेदन करने के लिए लिखा तथा भारत में अपनी प्रवृत्तियों के विषय में श्यामजी को अवगत कराया।

स्वदेश लौटकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने रतलाम, उदयपुर, जूनागढ़ आदि रजवाड़ों में प्रधानमन्त्री तथा दीवान जैसे उच्च पदों पर कार्य किया, किन्तु देशी रियासतों के नियन्त्रक अंग्रेजी रेजिडेण्टों तथा अन्य अधिकारियों से उनकी पटरी कभी नहीं बैठी। श्यामजी स्वभाव से ही स्वतन्त्रताप्रिय तथा देश की स्वाधीनता के सम्बन्ध में अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार रखते थे। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत में रहकर वे न तो देश की स्वतन्त्रता के लिए अपनी प्रयत्नों को जारी रख सकते हैं और न खुलकर अपने विचारों को अभिव्यक्त ही कर सकते हैं, तो उन्होंने १८९७ में इंग्लैण्ड के लिए प्रस्थान किया। पर्याप्त समय तक वे लंदन में रहकर अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन करते रहे, किन्तु जब अंग्रेज शासकों ने उनकी प्रवृत्तियों के प्रति नाराजगी दिखानी आरम्भ की, तो वे फ्राँस की राजधानी पेरिस चले गये। यहाँ से उन्होंने इण्डियन सोशियोलोजिस्ट नामक पत्र निकाला और उसके माध्यम से अपने उग्र राजनैतिक विचारों का प्रचार करते रहे। प्रथम महायुद्ध के छिड़ते ही राजनैतिक कारणों से उनका फ्राँस में रहना भी कठिन हो गया तो वे स्विट्जरलैण्ड की राजधानी जेनेवा आ गये। यहाँ पर ही ३० मार्च १९३० को उनका निधन हो गया।

श्यामजी कृष्ण वर्मा संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने प्राच्यविद्या विषयक बर्लिन सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया तथा संस्कृत को एक जीवित भाषा सिद्ध करते हुए अपना विद्वतापूर्ण निबन्ध पढ़ा था। स्वामी दयानन्द के वे अत्यन्त विश्वासभाजन थे। यही कारण है कि श्री महाराज ने उन्हें परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया। २८ दिसम्बर १८८५ को परोपकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन में वे इस सभा के उपमन्त्री नियुक्त किये गये। १८८८ ई० के अन्त में वे अजमेर रहने लगे। यहाँ रहकर उन्होंने कुछ काल तक वकालत की। जब १८९१ में वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से अजमेर ले आया गया तो उन्हें इस मुद्रणालय का अधिष्ठाता बना दिया गया किन्तु तत्कालीन प्रेस मैनेजर पं० रैमलदास से मतभेद हो जाने के कारण उन्होंने शीघ्र ही इस पद से त्यागपत्र दे दिया। अजमेर निवास काल में परोपकारिणी सभा के सक्रिय कार्यकर्ता श्री हरविलास शारदा से उनका मैत्री भाव स्थापित हो गया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा की स्वामी दयानन्द के प्रति श्रद्धा जीवन के अन्त समय तक बनी रही। वे स्वामीजी को अद्वितीय राष्ट्रनेता तथा क्रान्तिकारी युगपुरुष के रूप में सम्मान देते थे।

वेद तथा सेमेटिक धर्मों के सन्दर्भ में स्त्री विमर्श

—डॉ० आचार्या प्रियंवदा वेदभारती

वेद तथा वैदिक ग्रन्थों में स्त्री पुरुष में अधिष्ठित चैतन्यस्वरूप आत्मा को शरीररूपी पुरी में निवास करने के कारण 'पुरुष' यह अन्वर्थ नाम दिया गया है। यह जीवात्मा शरीर रूप से न स्त्री है न पुरुष है न कुमार है न कुमारी है, यह जिस-जिस शरीर को धारण करता है उसी लिङ्ग वाला हो जाता है।[१] इससे स्पष्ट है कि पुरुष शरीर में स्थित जीवात्मा का जो महत्त्व है वही नारी शरीर में स्थित जीवात्मा का भी है।

बृहदारण्यकोपनिषद् तथा मनुस्मृति के अनुसार एकाकी प्रजापति का मन नहीं रमा, अन्य की आकांक्षा करते ही वह दो भागों में विभक्त हो गया। द्विदल (दाल) के एक-एक दल के समान विभक्त ये दोनों भाग ही पति-पत्नी कहलाये। आकाश स्त्री से ही परिपूर्ण होता है। यह सम्पूर्ण मानव सृष्टि इसी एक द्विधा विभक्त युगल का सृजन है।[२] इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में आत्मा के स्तर पर स्त्री पुरुष का कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। दोनों समवीर्य हैं, समशील हैं, समव्रती हैं, समान ही धर्माचरण में समर्थ हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है—

स पत्नी पत्या सुकृतेन गच्छताम्। यज्ञस्य युक्तौ धुर्यावभूताम्॥
संजानाना विजहतामरातीः। दिवि ज्योतिरजरमारभेताम्॥[३]

अर्थात् सत्कर्मों द्वारा पति-पत्नी परस्पर युक्त रहकर यज्ञीय आचरण करें, धर्माचरण करें। वे ऐसे संयुक्त रहें जैसे हल में बैलों की जोड़ी संयुक्त रहती हैं। वे संयुक्त रहकर शत्रुओं का नाश करें। फलतः वे अजर-अमर ज्योति को प्राप्त करते हैं। स्त्री-पुरुष में यदि कोई भेद है तो केवल शारीरिक संरचना और सौम्य तथा तैजस गुणों का है। स्त्री जहाँ अधिक विनम्र, धैर्यवाली, सहानुभूतिशील, ममतामयी और व्यवहार कुशल हैं वहीं

---

१. (क) नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते। —श्वेता० ५।१०
(ख) त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख॥ —अथर्व० १०।८।२७

२. (क) स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।
स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ सम्परिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापात यत्ततः पतिश्च पत्नीधाभवतां तस्मादिदमर्धद्विदलमिव स्थ इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रियापूर्यत एव तां समभवन्ततो मनुष्या अजायन्त। —बृ० उ० १।४।२-३
(ख) द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥ —मनु०१।३२

३. तै० ब्रा० ३।७।५।

पुरुष में प्रखरता, कठोरता, पराक्रम और शारीरिक शक्ति अधिक है। इन्हीं तैजस और सौम्य गुणों का सम्मिलन विवाह कहलाता है। यही प्रश्नोपनिषद् के रयि और प्राण हैं। सौम्य और तैजस गुणों का साहचर्य जड़ और चेतन दोनों में हो रहा है। इस सम्मिलन से दोनों जगत् प्राणवान् ज्योतिष्मान् और गतिमान् होकर नवीन सृष्टि करते हैं। सौम्य तत्त्व के बिना तैजस तत्त्व अकिञ्चित्कर है। समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया है और इसमें दोनों ही तत्त्वों की समान महत्ता है। विवाह के अवसर पर पढ़े जाने वाले मन्त्रों में स्पष्ट कहा जाता है—''**द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमस्मि ऋक्त्वम्**'' पुरुष द्यौलोक है तो स्त्री पृथिवी लोक (पुरुष साम है तो स्त्री ऋक्), दोनों के सामञ्जस्य से सृष्टि का सञ्चालन होता है, वैसे ही पुरुष और नारी के सहभाव से मनुष्य-सृष्टि का सञ्चालन होता है। वेद की नारी न अभिशप्ता है, न अबला है, न दासी है, न पापिनी है, न खेती है अपितु पुरुष के समान ही शिक्षा के समस्त अधिकारों को प्राप्त करने वाली है, विदुषी है, वीरसू है, वीरांगना है दुष्टों को प्रकम्पित करने वाली घोरा है, यज्ञ विद्या एवं पुरुषार्थचतुष्टय की मर्मज्ञा है, चतुष्कपर्दा है भूगर्भ विद्यावित् है, चिकित्सिका है, न्यायाधीश है। अर्थात् ऐसा कोई क्षेत्र जो पुरुष के लिए आरक्षित हो और नारी के लिए अनारक्षित हो एक भी ऐसा संकेत वेदों में प्राप्त नहीं होता।

प्रस्तुत हैं कतिप वैदिक स्थल—

१. विदुषी एवं अध्यापिका—

गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणी वेद पण्डिता, ज्ञान-विज्ञान का अधिगम करने वाली नारी को वेद के अनुसार अध्यापन एवं उपदेश का कार्य कर राष्ट्र की बौद्धिक उन्नति में योगदान देना चाहिए। इस विषय में शतशः मन्त्र उद्धृत किये जा सकते हैं किन्तु स्थाली पुलाक न्याय से एक मन्त्र ही पर्याप्त होगा।

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्॥[१]

एक वेद, दो वेद, चारों वेद, या अष्टापदी=आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थवेद, इन चार उपवेदों सहित वेद, या शिक्षा, कल्प, व्याकरणादि षडङ्गों सहित वेद उपवेदों का ज्ञान प्राप्त की हुई निर्मल बुद्धि वाली विदुषी स्त्रियाँ निर्मल जल के समान शुद्ध वचन बोलती हुईं विस्तृत ज्ञानरूपी आकाश में अनेक विद्याओं का प्रचार करें। (दयानन्द भाष्य)

१. ऋग्० १।१६४।४१

२. धर्मार्थकाममोक्षवित्—

वेदों के अनुसार नारी केवल धर्म, अर्थ, काम को ही नहीं मोक्ष सहित पुरुषार्थ-चतुष्टय को जानने वाली है तथा प्राप्त करने वाली है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो नारी चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन है। यज्ञ, व्रत, अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि के द्वारा वह धर्मसंग्रह करती है। पति को आय के नवीन साधन बताकर या स्वयं सहयोग कर अर्थ की प्राप्ति कराती है। पति की इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा वह काम को सिद्ध करती है और मोक्ष के आधारभूत, सत्त्वगुण, त्याग, तपस्या और आस्तिकता को पति में भी समाविष्ट करके मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है।

'नारी मोक्ष की अधिकारिणी नहीं', 'मोक्ष की प्राप्ति के लिए नारी का पुरुष शरीर में जन्म लेना अनिवार्य है' आदि अवैदिक मान्यताओं का वैदिक विद्वानों ने तो खण्डन किया ही है, बुद्ध, महावीर ने भी इन पर प्रबल प्रहार किया है। बुद्ध की अपेक्षा महावीर का दृष्टिकोण नारियों के प्रति उदार है। वे दृढ़ता से कहते हैं—"**अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्।**" सम्भवतः यही कारण था कि जैन धर्म के अनुयायियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक थी।

३. भूगर्भविद्यावित्—

महर्षि दयानन्द अनेक वेदमन्त्रों के भावार्थ में लिखते हैं कि नारियाँ भूगर्भादि विद्या को जानने वाली बनें। मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाओं में एक ऋषिका को सार्पराज्ञी की उपाधि प्राप्त है। "**इमे वै लोकाः सर्पाः**" ये लोक-लोकान्तर निरन्तर सर्पणशील रहने के कारण (सर्प) कहलाते हैं, ज्ञान के द्वारा इन पर आधिपत्य स्थापित करने वाली नारी **सार्पराज्ञी** हुई। सार्पराज्ञी ऋषिका के द्वारा '**आयं गौः पृश्निरक्रमीत्....**' आदि भूगोल-खगोल सम्बन्धी सूक्तों का तत्त्व-दर्शन किया गया है।

४. ज्योतिर्वित्—

यजु० ३०।१५ का ऋषि दयानन्द कृत भावार्थ इस प्रकार है कि 'बारह युगों में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर अनुवत्सर और इदवत्सर इन पाँच प्रकार के कालावयवों का तथा प्रभव आदि ७० मूल संवत्सरों का स्त्री-वर्ग को यथावत् ज्ञान होना चाहिए।'

५. न्यायाधीश—

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥[1]

---

१. यजु० १०।२६।

यजुर्वेदीय यह मन्त्र कहता है कि राजाओं की स्त्रियाँ न्यायविद्या एवं राजनीति की शिक्षा दूसरों को दें। जिस प्रकार राजा न्याय करे उसी प्रकार राजपत्नी भी स्त्रियों का न्याय यथोचित करें।

६. चिकित्सिका—

नारी का चिकित्सिका रूप इस मन्त्र में अभिलषित है—

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मेऽअगदं कृत॥[१]

७. वीरांगना—

वेदों की उदात्त निष्पक्ष विचारधारा में यदि नारी गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार क्षत्रिया है, सिंही है, तो वीरिणी, वीरपत्नी, वीरसू बनकर संग्राम में जाये, विभिन्न शस्त्रों का संचालन करे, जेट विमान उड़ाये या बम वर्षा कर शत्रुओं को ध्वस्त करे। वैदिक नारी गर्जना करती है—

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥[२]

यह तुच्छ मुझे कायर समझता है, इसे विदित नहीं कि मैं वीर की पत्नी हूँ तथा स्वयं वीरिणी हूँ। ये मरने-मारने वाले सैनिक मेरे सखा हैं। वेद की नारी आगे भी कहती है—

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥[३]

मैं अकेली ही वीरांगना नहीं अपितु मेरे पुत्र शत्रुओं का वध कर देने वाले हैं मेरी पुत्री विशेष रूप से तेजस्विनी है। मेरा पति पराक्रमशालिता में प्रसिद्ध है। महर्षि दयानन्द यजु० १६।४४ के भावार्थ में लिखते हैं—"शूरवीर स्त्रियों की भी सेना होनी चाहिए। स्त्री भी युद्ध करे।"

८. सबला—

वेद की नारी सबला है अबला नहीं वह स्वयं अपने विषय में कहती है—

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः॥[४]

---

१. यजु० १२।७६।
२. ऋग् १०।८६।९।
३. ऋग्० १०।१५९।३।
४. ऋग्० १०।१५९।१।

मैं बल वाली हूँ सबला हूँ मैंने पति को जीता है।

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत्॥[1]

मैं राष्ट्र की ध्वजा हूँ, मैं समाज का सिर हूँ। मैं उग्र हूँ मेरी वाणी में बल है। शत्रु सेनाओं का पराजय करने वाली मैं युद्ध में वीरता दिखाने के पश्चात् ही पति का प्रेम पाने की अधिकारिणी हूँ।

९. सन्तान निर्मात्री—

गृहस्थ जीवन की उत्तम परिणति सुसंस्कृत सुयोग्य सन्तति के निर्माण में है। सन्तान को सुसंस्कृत करने के लिये पहले माता-पिता का सुसंस्कृत होना आवश्यक है। वेद आदेश देता है—

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व। श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः। पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽएधते गृहे॥[2]

हे सूर्य के समान तेजस्वी गृहस्थियो! तुम्हारा घर सोमपान करने योग्य शुद्ध, पवित्र, प्रभुभक्तों से परिपूर्ण हो, उसमें सदैव सत्यवाणी का व्यवहार करते हुये प्रसन्न रहो, पति-पत्नी दोनों सुन्दरता से धर्म का पालन करो तब तुम्हारे घर में इच्छाओं को पूर्ण करने वाली धार्मिक दिव्य पुरुषार्थी सन्तति उत्पन्न होगी। सन्तान के निर्माण में यद्यपि माता-पिता दोनों का समान महत्त्व है पुनरपि गर्भ में नौ मास धारण करने के कारण तथा शैशवावस्था माता के ही सान्निध्य में व्यतीत होने के कारण "**नार्यो मूलमपत्यानाम्**" कहकर नारियों को सन्तान का मूल बताया गया है। **माता देवानामदितेरनीकम्** (ऋग्० १।११३।१९) महे नो अद्य सुविताय बोधि (ऋग्० ७।७५।२) **सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे** (यजु० १२।१५) आदि शतशः वैदिक मन्त्र सन्तान निर्माण में नारी माहात्म्य का गुणगान करते हैं। वेद का—**सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥** (१०।८५।४६) मन्त्र नारी को परिवार की सम्राज्ञी=महारानी घोषित करता है न कि दासी।

वैदिक संविधान में स्त्री तथा पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा का अभाव है। प्रमाण है वेदों के स्तम्, वियौष्टम्, अश्नुतम्, क्रीडन्तौ, मोदमानौ इमौ दम्पती आदि द्विवचनान्त शब्द।[3] दहेज प्रथा का यहाँ निषेध है। वेद स्पष्ट

---

१. ऋग्० १०।१५९।२
२. यजु० ८।५।
३. इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥ (अथर्व० १४।१।२२)

कहता है—

अ॒श्री॒रा त॒नूर्भ॑वति॒ रुश॑ती पा॒पया॑मु॒या।
पति॒र्यद्व॒ध्वो॒३॑ वास॑सा॒ स्वमङ्ग॑मभि॒धित्स॑ते॥[१]

जो पत्नी की वस्तुओं से अपने को सुसज्जित करता है उसका शरीर पापी हो जाता है। इसी प्रकार **पर्दा प्रथा सती प्रथा** भी वेद विरुद्ध है। बाल्यावस्था में विवाह न करने के तथा वैधव्य में पुनर्विवाह करने के अनेक संकेत वेद में प्राप्त होते हैं। वेद के इन उद्धरणों से प्रमाणित होता है कि वैदिक नारी की स्थिति उच्चतम है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि जब वेद तथा वैदिक वाङ्मय में नारियों की पर्याप्त प्रतिष्ठा है और पुरुषों की भाँति ही उन्हें समस्त अधिकार प्राप्त हैं तब भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षित नारियों में वैदिक धर्म के प्रति घृणा के भाव क्यों व्याप्त हैं तथा उनमें ये धारणायें क्यों अन्तर्निहित हैं कि—

* स्त्री सदा से ही पुरुष के अधीन रही है। वह अपने-अपने पतियों की सम्पत्ति है।

* स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने एवं सामाजिक जीवन में सहभागी बनाने का अवसर केवल आधुनिक युग में और केवल ख्रीस्तपन्थी यूरोप के प्रभाव से ही मिला है, अर्थात् स्त्रियों की स्वतन्त्रता में ईसाई धर्म का विशेष हाथ है।

* उच्च शिक्षा, सेना, व्यापार आदि में स्त्रियों को स्वतन्त्र, उद्यमी, सैनिक अधिकारी तथा प्रशासक आदि बनाने का अवसर मानवीय इतिहास में पहली बार आधुनिक दौर में ही मिला है।

वस्तुतः ये धारणायें यूरोपीय ख्रीस्तपन्थी इतिहास को ही मानवीय इतिहास मानने वाले आधुनिक संगठनों की हैं जो कि नितान्त अज्ञानमूलक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक काल के बाद मध्यकाल से ही स्त्रियों की दशा भारतवर्ष में अत्यन्त दयनीय होने लगी थी, स्त्रियों पर पुरुषों का आधिपत्य हो गया था, विशेष रूप से सातवीं सदी से जब मुसलमानों के आक्रमण होने लगे और कामसम्बन्धी विचित्र इस्लामी धारणाओं के कारण स्त्रियों के साथ अत्याचार, अनाचार, बलात्कार बढ़ने लगे तब कन्याओं का विवाह बाल्यावस्था में ही होने लगा और कन्याओं का उपनयन संस्कार पहले बाधित हुआ तत्पश्चात् वर्जित ही हो गया। तत्कालीन पण्डितों ने धर्मशास्त्रों में नयी-नयी युक्तियाँ दी, नयी-नयी व्यवस्थायें प्रस्तुत कीं फलतः नारियों की शिक्षा के सारे द्वार बन्द हो गये। परन्तु न केवल भारतवर्ष में अपितु अन्य देशों और अन्य जातियों में भी स्त्रियों की दशा

इ॒हेमावि॑न्द्र॒ सं नु॑द चक्रवा॒केव॒ दम्प॑ती।
प्र॒जयै॑नौ स्वस्त॒कौ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नुताम्॥ (अथर्व० १४।२।६४)

१. ऋ० १०।८५।३०

ऐसी ही थी। ईसाई पादरियों द्वारा ख्रीस्त विश्वासों के आधार पर स्त्रियों को शैतान का माध्यम घोषित कर उन्हें दीन-हीन दशा में रहने को विवश किया गया। बारहवीं से सोलहवीं शती तक यूरोप में महिलाओं पर नृशंस अत्याचार किए गए। ९० लाख स्त्रियों को चुड़ैल घोषित कर मारा गया। हजारों स्त्रियों को जिंदा जलाया गया। तत्पश्चात् उन देशों में नवजागरण की लहर उठी, ख्रीस्तपन्थी मान्यताओं का प्रचण्ड विरोध हुआ, तब जाकर शताब्दियों बाद इंग्लैण्ड की अदालत में स्वीकार किया गया कि स्त्रियों में भी आत्मा होती है तब भी स्त्रियों में विवेक शक्ति की कमी तो मानी ही जाती रही, उन्हें वोट देने का अधिकार बीसवीं शती में ही मिल पाया, जबकि भारतवर्ष में वैदिक काल से ही स्त्रियाँ पञ्चायतों तथा राज्य के सञ्चालन में सहभागी रही हैं।

यूरोप में नारियों के सम्बन्ध में निम्न मान्यतायें हैं जो कि द्रष्टव्य हैं—

१. गॉड ने प्रथम मैन एडम की एक पसली से स्त्री (ईव्) बनाई जो मैन के मन बहलाव के लिए बनाई गई। इस प्रकार स्त्री=ईव् मैन के बाद की रचना है वह मैन का केवल एक अंश है।

२. नर-नारी का स्वेच्छा से मिलन पाप है, इस पाप के लिए मैन को शैतान के कहने पर वूमैन ने फुसलाया, इसलिए वूमैन शैतान की बेटी है, वह दोषी है, जादूगरनी है, डायन है, उसे यातना देना पुण्य का कार्य है।

३. स्त्री सात श्रापों से श्रापित हैं, मातृत्व भी एक अभिशाप है। हर व्यक्ति चूँकि पाप से पैदा हुआ है इसलिए जन्म से पापी है। ईसा मसीह ही उसे पाप से मुक्त करा सकते हैं।

४. प्रार्थना के समय किसी भी मर्द को अपना सिर नहीं ढकना चाहिए परन्तु हर एक औरत को प्रार्थना के समय अपना सिर अवश्य ढकना चाहिए। औरत जब सर ढक लेती है तो मुण्डित सिर मानी जाती है।

५. चर्च में औरतें खामोश रहें उन्हें बोलने की अनुमति ख्रीस्तपन्थ में नहीं है।

इसी प्रकार संसार का दूसरा प्रसिद्ध सेमेटिक मजहब इस्लाम जो अपने अतिरिक्त किसी को श्रेष्ठ नहीं मानता, संसार से सभी मिटा देना चाहता है, नारियों के विषय में क्या मान्यता रखता है दृष्टिपात करें—

१. अगर तुमको इस बात का डर हो कि बेसहारा लड़कियों में इंसाफ कायम रख सकोगे तो अपनी इच्छा के अनुकूल दो-दो, तीन-तीन, चार-चार औरतों से निकाह कर लो, लेकिन अगर तुमको इस बात का शक हो कि बराबरी न कर सकोगे तो एक ही बीबी करना, या जो तुम्हारे कब्जे में हो उस पर ही सन्तोष करना। यह तदबीर "मुनासिब है"।

(कुरान पारा ४ सूरह निसा आयत ३)

२. ऐसी औरतें जिनका खाविन्द जिन्दा हो, उनको लेना हराम है, मगर जो कैद होकर तुम्हारे हाथ लगी हो उनके लिए तुमको खुदा का हुक्म है। (कुरान पारा ४ सूरह निसा आयत २४)

३. अगर तुम्हारा इरादा एक बीबी को बदल कर उसकी जगह दूसरी बीबी करने का हो तो जो तुमने पहिली बीबी को बहुत सामान दे दिया हो तो भी उसमें से कुछ भी न लेना। (कुरान सूरह निसा आयत २०)

४. तुम्हारी बीबियाँ तुम्हारी खेतियाँ हैं अपनी खेती जिस तरह चाहो जाओ और अपने लिए आइन्दा का भी बन्दोबस्त रक्खो।

(कुरान पारा २ सूरह बकर रुकू २८ आयत २२३)

५. अगर कोई गुण्डा किसी भले आदमी की औरत से जिना बिलजब्र (बलात्कार) कर डाले तो उस शरीफ आदमी को भी चाहिए कि वह भी उस गुण्डे की शरीफ औरत से बलात्कार करे।

(कुरान पारा २ सूरह बनकर रुकू २२ आयत २२३)

इन दोनों प्रसिद्ध मतों की नारी सम्बन्धी मान्यताओं का सम्मिलित विश्लेषण किया जाये तो यही निष्कर्ष निकलता है कि नारियों को अधोगति तक पहुँचाने में जहाँ—**'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'** का उद्घोष करने वाले भारत के शङ्कराचार्य आदि धर्माचार्य उत्तरदायी हैं, वहीं यहूदी, ईसाई तथा उससे उत्पन्न होने वाले इस्लाम आदि मजहबों का भी बहुत बड़ा हाथ है। नारियों के विषय में यदि उदात्त और निष्पक्ष विचारधारा के दर्शन करने हों तो वेद तथा वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अवश्य करना चाहिये और वेदों की उदात्तता के दर्शन करने हों तो महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य का अध्ययन तथा अनुशीलन भी अवश्य करना चाहिये। कारण वेदों का सार्वभौमत्व, अपौरुषेयत्व तथा सर्वविद्यानिधानत्व आज ऋषिकृत वेदभाष्य में ही पूर्णतया सुरक्षित है।

सम्पर्क—गुरुकुलार्षकन्याविद्यापीठम्, श्रवणपुरम्, नजीबाबाद (उ०प्र०)
चलभाष : ९४१२८२४४२४

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासलेखक और कथाकार

आचार्य चतुरसेन की आर्यसमाजी पृष्ठभूमि

[ऋषि दयानन्द से सन्दर्भित विपुल लेखन आचार्य चतुरसेनजी की रचनाओं में प्राप्त होता है। उनके प्रारम्भिक जीवन की आधारभित्ति में आर्यसमाज की प्रभावी भूमिका थी। उनके पिताश्री केवलराम ठाकुर ने कर्णवास में ऋषि दयानन्द के दर्शन किये थे और उपदेशामृत सुना था। ***उनके द्वारा स्वयंलिखित आत्मवृत्त का स्वल्पांश हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—सम्पादक]***

उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर प्रान्त में, गंगातट पर स्थित अनूपशहर के निकट चान्दौख ग्राम में एक क्षत्रिय परिवार के साधारण से कच्चे घर में, सम्वत् १९४८ भाद्रपद कृष्णा, चतुर्थी-रविवार (२६ अगस्त, सन् १८९१) के दिन गोधूलिबेला में मेरा जन्म हुआ था। यह घर और यह ग्राम हमारा पुश्तैनी निवास न था, अस्थायी प्रवास का स्थान था। स्थायी पैतृक स्थान—इसी चान्दौख ग्राम के निकट दक्षिण-पच्छिम कोई ३-४ कोस पर 'बिबियाना' ग्राम है। चान्दौख मैंने अपने होशहवास में देखा नहीं है। न उस घर को पहचान सकता हूँ, जिसमें मेरा नाल गढ़ा है। बिबियाना मैंने बालकाल में देखा है, वहाँ के टूटे-फूटे घर का भी मुझे ध्यान है। वहाँ हमारा पैतृक शिवालय, बाड़ा और तालाब भी है। वह भी मैंने देखा है। अब भी मेरे परिजन-कौटुम्बिक एक-दो वहाँ रहते हैं ऐसा सुनता हूँ, पर मुझे जानते नहीं हैं और मैं भी उन्हें नहीं पहचानता हूँ। सुना था कि चान्दौख मे मेरे पिताश्री बहुत कम रहे, परन्तु उनके जीवन में चान्दौख के निवास का सांस्कृतिक प्रभाव बहुत रहा।

पिताजी बहुत कम पढ़े-लिखे थे। आजीविका की तलाश में मेरे जन्म से कुछ मास प्रथम ही चान्दौख आ बसे थे। यहाँ उन्हें दो सांस्कृतिक पुरुषों की मित्रता का लाभ हुआ। एक थे प्राणाचार्य वैद्य होमनिधि शर्मा उदार विचारों के संस्कृतज्ञ पण्डित, और आसपास के प्रसिद्ध चिकित्सक। दूसरे थे ठाकुर महावीरसिंह, गाँव के जमींदार। तीनों मित्र समानआयु थे, निकट पड़ौसी थे। तीनों के घर बराबर-बराबर थे। मेरा जन्म होने पर मेरी जन्मकुण्डली होमनिधि शर्मा ही ने बनाई थी। नाम रखा था चतुर्भुज, पर कहते थे कुलदीपक। उनका कहना था—लड़के के ग्रह तुम्हारे घर के योग्य नहीं हैं। जिएगा तो कुलदीपक होगा। इसी से पिता का प्यार मुझ पर बहुत था। कुछ दिन पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती जब कर्णवास आए हुए थे, तब पिताजी और ठाकुर साहब ने कर्णवास जाकर स्वामीजी के दर्शन किए और उपदेशामृत सुना था। तभी से उनके विचार आर्यसमाज की ओर झुक गए थे। फिर जब चान्दौख ग्राम में तीनों मित्रों का एकसाथ रहना हुआ, तो परस्पर विचार-विनिमय करने से शीघ्र ही वे कट्टर आर्यसमाजी हो गए। तब तक बम्बई और लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना तो हो चुकी थी, परन्तु अभी उसका व्यापक परिपुष्ट स्वरूप प्रकट नहीं हुआ

था। मूर्ति-पूजा आदि के खण्डन की जबर्दस्त चर्चा स्वामी दयानन्द के नाम के साथ देहातों में चल गई थी। जगह-जगह लोग कहते थे—एक संन्यासी इधर रम रहे हैं। संस्कृत बोलते हैं, मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। वेद को ईश्वर-वाणी बताते हैं।

ठाकुर महावीरसिंह और पिताजी, दोनों का नया जोश था। उस नए जोश में उन्होंने अपनी नवाविष्कृत शैली में न जाने कितना आर्यसमाज का प्रचार किया। नवाविष्कृत शैली क्या थी, सुनिए। सैकड़ों मन्दिरों, मठों और देव-स्थानों से महादेव-चामुण्डा-भैरव आदि की मूर्तियाँ रातों-रात चुराकर गंगा में या निकट के तालाब में फेंक देना। जहाँ किसी देवता के स्थान पर बहुधा स्त्रियाँ आती-जाती हों, वहाँ उन्हें भूत बनकर डरा देना, कि फिर उधर जाने का नाम न लें। कहीं विवाह आदि कृत्य पौराणिक रीति पर होता—तो झट एक आर्यसमाजी पण्डित को लेकर जा धमकते, कभी-कभी फौजदारी करके भी उसी से कृत्य कराते। लाठी के धनी थे। लाठी हाथ में होने पर १०-२० को भारी। डील-डौल में विशाल, सुर्ख सिंदूरिया रंग, घनी काली दाढ़ी (पीछे दाढ़ी नहीं रखते थे) मजबूत सोटा हाथ में, नालदार चमरौधे का जूता। बस ठाकुर और आप गाँव-गाँव घूमना और उपरोक्त अद्‌भुत रीति से आर्यसमाज का प्रचार करना। कभी-कभी केवल 'नमस्ते' कहलाने के लिये लाठी चल जाती थी। श्री होमनिधि शर्मा से उन्होंने सन्ध्या-गायत्री सीखी। जीवन के अन्त तक उनका सन्ध्या-वन्दन दोनों समय चलता रहा। धीरे-धीरे बोलने और कविता का भी उन्होंने अभ्यास कर लिया। कविता करते थे—केवल स्त्रियों में प्रचलित ग्राम्यगीतों की। जिन्हें प्रथम माताजी को कण्ठ कराकर गवाया जाता—पीछे गाँव की अन्य स्त्रियाँ ब्याह-शादी और त्योहारों पर वही गीत गाती थीं। ये गीत पातिव्रत धर्ममूलक, कुरीति-निवारक तथा माता-मसानी पूजन के खण्डनात्मक होते थे। जब विवाह आदि में स्त्रियाँ ये गीत गाती थीं, तब उन्हें सुनकर पुरुषगण बहुत प्रसन्न होते थे।

वे नित्य प्रातः चार बजे उठते कोई भजन गुणगुनाते हुए गाय-भैंसों को सानी देते, फिर एक चिलम भरकर हुक्का पीते हुए कपास औटने बैठ जाते। जब तक हुक्का खत्म हो, निकाल लेते दस-पन्द्रह सेर बिनोले और डाल देते भैंसों के आगे। शौच से निवृत्त हुए तो धार निकालते। तब कहीं दिन निकलता। नहा-धो सन्ध्या कर तिलक छाप लगा एक लोटा ताज़ा मट्ठा, पावभर ताज़ा मक्खन डाल चढ़ाकर अब निकलते खेती का चक्कर लगाने। कमेरों को काम की हिदायतें दीं, और चल दिए ठाकुर दोस्त के पास। एक-दो गाँव में अपनी रीति पर प्रचार किया, दोपहर को घर आए। सीधा सादा भोजन। दाल और मोटी-मोटी रोटियाँ, साथ में पावभर घी। तानकर सोए, तीसरे पहर उठे, तो ठाकुर की चौपाल या होमनिधि शर्मा की बैठक। कुछ वृद्ध कुछ जवान और आ जुटे, हुक्का गुड़गुड़ाने और गप्पें लड़ाने लगे। सब बातें आर्यसमाजी, खूब कट्टर, न रियायत न संशोधन। आस-पास के दस-पाँच गाँवों की चर्चा हो गई।

पचासों आदमियों की आलोचना हुई। ज़ोरशोर से स्कीमें चलीं, जिनका अन्तिम ध्रुव था—माता-चामुण्डा, मूर्तिपूजा, पुराण और श्राद्ध कैसे उठाया जाए तथा बाल-बच्चों को कैसे और कहाँ पढ़ाया जाए।

ठाकुर महावीरसिंह बड़े मस्त जीव थे। पूरे गांव के जमींदार थे, खाने-पीने की चिन्ता से बेफिक्र। लेकिन पूरे फक्कड़, हाथ हमेशा खाली रहता। खर्च की ज़रूरत पूरी करने को कभी-कभी अद्भुत काम कर डालते थे। मस्लन्, बन्दूक उठाई और दो सूअर गंगा के पठार से मार लाए। उन्हें घोड़े पर लादा और पैंठ के दिन जाकर उनका मांस पैंठ में बेच दिया। अथवा—झींगें और मछली जो हाथ लगे। गुसैल पूरे थे। खट से हाथ चला बैठते थे। उनके पुत्र थे—उदयवीरसिंह। पिताजी का इस तरुण से स्नेह था। इसकी सगाई हुई लाहौर के राजा रणजीतसिंहजी की पोती से। सगाई चढ़ी तो ठाकुर ने गाँव-भर के चमारों से बेगार ली। एक चमारी को पीट दिया तो मार से उसका गर्भ गिर गया। तब ठाकुर और पिताजी ने चमारी की बहुत सेवा की, तथा कुछ दक्षिणा देकर मुँह बन्द किया। पास-पड़ोस के जमींदार से हाथी-घोड़े, रथ-मझोलियों को माँगकर ढेर कर लिया। पर उदयवीरसिंह का ब्याह इस राजकुमारी से न हो पाया। सगाई में पाए रुपयों की गठरी तथा ठकुरानी के जेवरों का डब्बा उड़ाकर वे विलायत भाग गए बैरिस्टरी पढ़ने। आगे चलकर यही अलीगढ़ के प्रसिद्ध बैरिस्टर उदयवीरसिंह हुए।

पण्डित होमनिधि शर्मा के परामर्श से पिताजी ने गाँव छोड़ कस्बे में आ रहने का विचार स्थिर किया। उस समय मेरी आयु ४-५ वर्ष ही की थी, जब वे सिकन्दराबाद, जिला बुलन्दशहर में आ गये। कस्बे में आ बसने का कारण यह था—कि होमनिधि शर्मा ने कहा था; कि कुलदीपक को पढ़ाने-लिखाने के लिए तुम्हें शहर में रहना चाहिए। यहीं आकर मैंने अक्षराभ्यास आरम्भ किया।

सिकन्दराबाद में पिताजी को प्रसिद्ध आर्यसमाजी उपदेशक पण्डित मुरालीलाल शर्मा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्हें सब लोग शर्माजी कहते थे। वे मण्डी में गल्ले की आढ़त की दूकान करते थे। मोटा डण्डा हाथ में रखते। बोलते थे ठसक से। गाँव देहात के लोग उनके व्यंग्य भाषण सुनकर हँसते-हँसते लहालोट हो जाते थे। मैं स्कूल में पढ़ता था। परन्तु पिताजी ने संस्कारविधि, यज्ञ-हवन-सन्ध्या सिखाने को एक पण्डित लगाया था। बहुत बुरा लगता था तब यह पढ़ना। वह पण्डित गंदा देहाती और बूढ़ा था। दाँत मुँह में एक भी न था, पान-तम्बाखू खाता, मुँह फाड़कर मन्त्र पाठ करता तो तमाखू गन्धित थूक की बौछार ऊपर आती। आज तक उस पण्डित का भाड़ के समान फैला हुआ मुँह मुझे याद है। एक और आर्यसमाज के उपदेशकजी से पिताजी की मित्रता हो गई थी, उन्होंने एक ट्रैक्ट छपाया था—पिताजी ने ज़बर्दस्ती वह मुझे समूचा रटा दिया था। और जब जहाँ कुछ आदमियों की भीड़ होती, जल्सा होता—तो पिताजी मुझे खड़ा कर देते, वह रटा हुआ भाषण सुनाने को। बहुधा मुझे वह

प्रिय न लगता, फिर अनुशासन तो मैं सह न सकता था। बहुधा पिताजी के संकेत पर भाषण पाठ न करने पर चपतें भी पड़ जाती थीं। फिर तो रोते-रोते, हिचकियाँ लेते-लेते पूरा भाषण सुनाया जाता था। मजा यह था कि सुनने वाले तब भी खुश होते थे।

पिताजी आस-पास के गाँवों में 'नमस्ते' के नाम से प्रसिद्ध थे। दूकान के आगे नमस्ते का साइनबोर्ड टंगा रहता था। साथ ही ५-७ हुक्के, ढेर सा तमाखु, और तैयार आग। गाँव-देहात के लोगों को शहर कस्बे में जो भी काम होता—ब्याह-शादी के लिए चीज वस्तु खरीदनी होती, जेवर तैयार कराने होते, या कोई दूसरा काम होता, मामला-मुकदमा करना होता—तो वे सीधे 'नमस्ते' की दूकान पर पहुँचते। अपनी बिरादरी का हुक्का सुलगाते, और अपनी ज़रूरत रफ़ा करके घर लौट जाते थे। सब तरह की दिक्कतें और ठगी से बचकर।

हिन्दू-मुसलमान-हरिजन-अछूत जो भी उनकी दूकान के आगे होकर गुजरता—'नमस्ते' कहता। आर्यसमाज का प्रचार वे डण्डे से भी करते थे, और जुबान से भी। सभा में भाषण नहीं देते थे, पर गाँव-देहात में दस-बीस जनों के बीच कड़कती भाषा में जब वे कुरीतियों और रूढ़ियों के विपरीत बोलते थे, दूर से उनकी आवाज को पहचानकर गाँव वाले आ जुटते थे। मुरारीलाल शर्मा भी मोटा-सोटा रखते थे। परन्तु जब केवल सोटे ही की ज़रूरत पड़ती थी, तो पिताजी को साथ लेते थे। काम करने का एक उदाहरण सुनिए—खबर मिली, कि एक चमारी मुसलमान बनाई जा रही है। मुसलमान उसे मस्जिद में ले गए हैं। सुना तो खाली हाथ उठ चले—धड़धड़ाते मस्जिद में जा घुसे, चमारी का झोटा पकड़ हाथों में उठा सड़क पर धकेल दिया और जैसे हवा में उड़ाते हुए सीधे दूकान पर ला बैठाया। पलक झेंपते यह काम हो गया। मुसलमान मस्जिद में बहुत थे, वे समझे ही नहीं; कि यह क्या हो गया, पीछे लेना-लेना करके दौड़े। तब तक ये अपने आसन पर पहुँच चुके थे। चमारी रो रही थी। भीड़ जुड़ गई थी। पिताजी कह रहे थे—तीन साल में पकड़ा है। दो सौ रुपया लेना है। जो मालिक बने—रुपया दे जाय। एक-दो दस्तावेज़ सन्दूक से निकालकर सामने रख दीं। मुसलमान गरमा रहे थे—पर मुहल्ले में वे साहस न कर सकते थे। दस्तावेज़ तो महज़ पत्तेबाज़ी थी, घण्टे-आधे-घण्टे में भीड़ फट गई। मुसलमान भी निराश लौट गए, तो घर लाकर चमारी को खाना दिया। पता पूछकर गाँव से चमार को बुलवाया। चमार के आने पर कहा—अरे चन्दन, लगा तो बीस जूते इसकी टाँट पर, हरामखोर अपनी औरत को सम्हाल कर नहीं रखता। और लगे जूते चमार की चाँद पर। जब सब उपचार खत्म हो गए, तो सन्ध्या के अन्धकार में दो लठैत साथ देकर दोनों को गाँव भिजवा दिया। ऐसी बहुत घटनाएँ होती रहती थीं।

पिलखन गाँव का एक मुसलमान परिवार शुद्ध होना चाह रहा था। तब तक धर्मपाल और धर्मवीर की शुद्धि नहीं हुई थी। यह आर्यसमाज की पहली

ही शुद्धि थी। इससे प्रथम स्वामी दयानन्द के जीवन काल में एक शुद्धि हुई थी। शायद—अलखधारीसिंह की। शर्माजी ने कहा—चलो, मोर्चा जबर्दस्त हैं। समूचा गाँव मुसलमानों का है। और कोई ५०-६० आदमियों का गिरोह वहाँ पहुँचा। मैं भी साथ था। सब बातें भली-भाँति याद हैं। सम्भवतः सन् १९०४ या ५ की बात हैं। गाँव वालों ने इस परिवार का कुआँ बन्द कर दिया, इस पर पत्नी और तीन पुत्रों की मदद से इस वीर पुरुष ने रातों-रात घर के आँगन में कुआँ खोद डाला। हलवाई हमारे साथ था। शुद्धि हुई और भोज हुआ। सारे परिवार ने भोजन परोसा। नाम रखा गया 'हीरासिंह'। अनपढ़ देहाती था। मगर मजेदार शेरदिल। शाम को सभा जुड़ी। प्रसिद्ध भजनीक तेजसिंह भी गए थे, खूब लम्बे ताड़ के सामान, चौड़ा सीना, बड़ी-बड़ी मूँछें, सिंह की-सी दहाड़। मुरारीलाल शर्मा का भाषण और तेजसिंह के भजन। उत्साह हिलोरें ले रहा था। किसी ने कहा—हाथ का छुआ खाने से क्या ? हुक्का-पानी तो खुला ही नहीं। एक ठाकुर थे—बड़ गूजर, बड़ा डील, भारी दाढ़ी। बात उन्होंने सुन ली-पुकार लगाई—अरे भाई हीरासिंह, कचौरी खिलाई, पेट फूल गया—हुक्का भी तो पिला। और हुक्का आया। लेकर ठाकुर एक टूटे हुए मकान के ढूह पर जा बैठे। मुड्ढ-मुड्ढ ठाकुरों को आवाज लगाई, हुक्का पहिले पिया हीरासिंह ने। फिर ठाकुर ने चौधरी से कहा—पिओ ताऊ, पर ताऊ हिचकिचाने लगे। ठाकुर ने उठकर ताऊ का टेंटूआ दबोच कर हुक्के की नली हलक में ठूँस दी। बस, हुक्का खुल गया। हीरासिंह ठाकुर हो गया।

मुरारीलाल शर्मा और पिताजी ने मिलकर आस-पास के देहातों की काया पलट कर दी थी। आर्यसमाज जैसे बिखर कर उस चौहद्दी पर फैल गया। पीछे तो सिकन्दराबाद आर्यसमाज का प्रमुख केन्द्र बन गया। कर्णवास के भूमित्र शर्मा आए, प्रसिद्ध भजनीक वासुदेव आए, पं० कृपाराम (पीछे दर्शनानन्द) आए। गुरुकुल खुला, समाज बनी, सन्ध्या-हवन, भजन-उपदेश, व्याख्यान-संस्कार आदि की धूम मच गई। आए दिन गाँव देहातों में कोई-न-कोई गृहस्थ संस्कार कराता, और पिताजी के साथ इक्के पर बैठकर मैं जरूर जाता। रटा हुआ भाषण पढ़ता, कचौरी और लड्डूओं पर हाथ साफ करता। सिकन्दराबाद उन दिनों आर्यसमाज का एक केन्द्र-स्थान बना हुआ था। प्रसिद्ध भजनीक वासुदेव शर्मा और तेजस्वी गायक तेजसिंह की बड़ी धाक थी रोज ही धूमधाम से प्रचार, उपदेश और शास्त्रार्थ होते। मुरारीलाल शर्मा विशेष पठित तो न थे किन्तु थे बड़े वाग्मी। हम बालक रोज मुसलमानों के बालकों को पकड़कर कहते 'साले', कर शास्त्रार्थ। उनके 'ना' कहने पर खट से मारपीट करके चम्पत होते। उस समय मुझे प्रसिद्ध वाग्मी पं० तुलसीराम का सान्निध्य प्राप्त हुआ और पं० कृपाराम का परिवर्तित दर्शनानन्द रूप देखा। पीछे इन्हीं से मैंने दर्शन पढ़े। इटावा के पं० भीमसेनजी के भी सनातनी होने के बाद तभी दर्शन हुए, और उनके तथा श्री दर्शनानन्दजी के शास्त्रार्थों की हम विद्यार्थी खूब नकल उतारा करते थे।

"वैदिक पथ" के सदस्य बनकर लाभ उठायें

पञ्चवर्षीय शुल्क ८००/- आठ सौ रुपये भेजकर 'राष्ट्रधर्म' तथा 'राष्ट्रवादी दयानन्द' दो विशेषाङ्क, पृष्ठ संख्या २२४ निःशुल्क प्राप्त करें। साथ ही ४२४ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो' प्राप्त करें।

यह विशेषाङ्क और पुस्तक तीस रुपये की वी०पी० द्वारा भिजवाई जायेगी।

आजीवन (पन्द्रह वर्षीय) शुल्क २१००/- दो हजार एक सौ रुपये भिजवाकर तीन विशेषाङ्क 'राष्ट्रधर्म' व 'राष्ट्रवादी दयानन्द' और 'मनु और मनुवाद परीक्षा' पृष्ठ ३६८ निःशुल्क प्राप्त करें। साथ में ४२४ पृष्ठ की 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो' तथा आर्टपेपर पर बहुरंगी छपाईवाली ४०८ पृष्ठ की 'अष्टाङ्ग योग' और 'यजुर्वेद काव्यामृत' पृष्ठ ४९२ प्राप्त करें।

विशेषाङ्क तथा पुस्तकें पचास रुपये की वी०पी० द्वारा भिजवाई जायेगी।

राशि श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास (Shree Ghoormal Prahlad Kumar Arya Dharmard Nyas) खाता संख्या-4161000100032121, IFS कोड PUNB 0416100 के खाते में जमा करवाकर सूचना देने का श्रम करें।

—व्यवस्थापक

वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रभाकरदेव आर्य के लिए वर्द्धमान ऑफसेट
न्टर्स, एच-७७, इण्डस्ट्रीयल एरिया, हिण्डौन सिटी (करौली) राज० में मुद्रित एवं
ी घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ-ट्रस्ट ब्यानिया पाडा, हिण्डौन सिटी (राज०)
प्रकाशित।

सम्पादक—प्रभाकरदेव आर्य

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार कृत

चतुर्वेद भाष्य का भव्य प्रकाशन

चौदह खण्ड, आकार–२०×३०/८ में,

८६५० पृष्ठों में प्रकाशित

इस सहज समझ आनेवाले भाष्य के लिए भाष्यकार ने सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठोर तप करके इसे तैयार किया। कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसेट पर प्रकाशित इस भाष्य में मन्त्रों पर स्वर लगाये गये हैं। प्रत्येक शब्द का हिन्दी भाषा में अर्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद के गूढ़ार्थ को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

- ३१००.०० तीन सहस्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग, पृष्ठ ८६५०) ट्रान्सपोर्ट या डाकघर द्वारा सेवा में भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।
- ५१००.०० पाँच सहस्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग) के साथ ४१००.०० चार सहस्र एक सौ रुपये की पुस्तकें भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।
- आप रुपये हमारे पंजाब नेशनल बैंक, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी के खाता संख्या–4161000100032121 श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास (Shree Ghoormal Prahlad Kumar Arya Dharmard Nyas) IFS कोड PUNB 0416100 में जमा करवा सकते हैं। रुपये जमा करवाकर सूचना अवश्य देने का श्रम करें।

मूल्य परिवर्तन कभी भी हो सकता है। रुपये जमा करवाने के पूर्व सम्पर्क कर लेवें।

जानकारी के लिए सम्पर्क करें–09414034072, 09887452959

भारत सरकार पंजीयन नं० RAJBIL/2008/25333

डाक पंजीयन संख्या SWM-RJ-6166

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार कृत

चतुर्वेद भाष्य का भव्य प्रकाशन



चौदह खण्ड, आकार–२०×३०/८ में,

८६५० पृष्ठों में प्रकाशित

इस सहज समझ आनेवाले भाष्य के लिए भाष्यकार ने सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठोर तप करके इसे तैयार किया। कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसेट पर प्रकाशित इस भाष्य में मन्त्रों पर स्वर लगाये गये हैं। प्रत्येक शब्द का हिन्दी भाषा में अर्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद के गूढ़ार्थ को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

■ ३१००.०० तीन सहस्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग, पृष्ठ ८६५०) ट्रान्सपोर्ट या डाकघर द्वारा सेवा में भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।

❑ ५१००.०० पाँच सहस्र एक सौ रुपये भेजने पर चारों वेद (१४ भाग) के साथ ४१००.०० चार सहस्र एक सौ रुपये की पुस्तकें भिजवायेंगे। प्रेषण व्यय अतिरिक्त।

❑ आप रुपये हमारे पंजाब नेशनल बैंक, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी के खाता संख्या–4161000100032121 श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास (Shree Ghoormal Prahlad Kumar Arya Dharmard Nyas) IFS कोड PUNB 0416100 में जमा करवा सकते हैं। रुपये जमा करवाकर सूचना अवश्य देने का श्रम करें।

मूल्य परिवर्तन कभी भी हो सकता है। रुपये जमा करवाने के पूर्व सम्पर्क कर लेवें।

जानकारी के लिए सम्पर्क करें–09414034072, 09887452959

E-mail : smcolour@gmail.com